मानव मन्दिर

FORM 1
(See Rule 8)

Place of ublication	Hoshiarpur
Date Publication	10th of every month
...iodicity of publication	Monthly
...ter's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
...ationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri R... Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that particulars given above are true to the best of knowledge and belief.

Signature of Publi...

Dated : 10-3-9?

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpu... for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpu...

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 24-2-19...
को होगा।

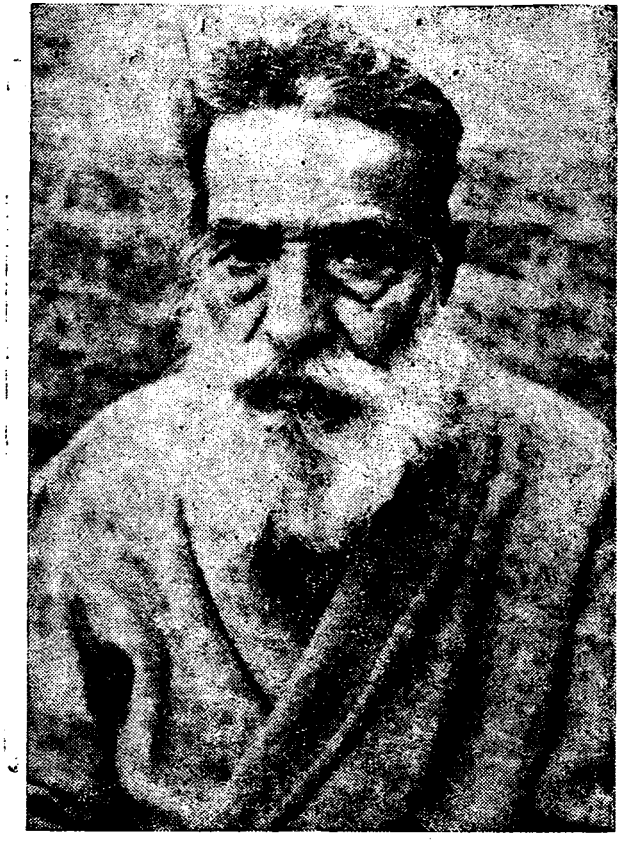

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Param Sant Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

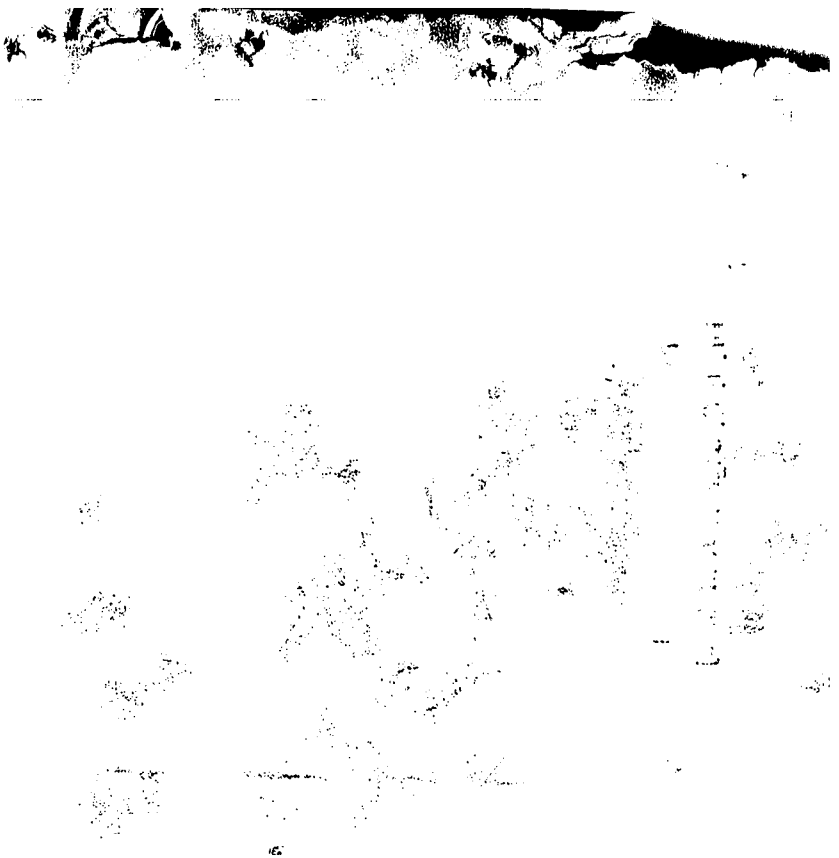

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN
मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17 | सोमवार, 11 फरवरी 1991 | संख्या 10

सहज भक्ति

परमसन्त हजूर दाता दयाल जी महाराज

राधास्वामी आये, प्रगट होय जब से।
राधास्वामी नाम, सुनाये तब से॥

इस शब्द पर ध्यान करने से पहिले, मेरे कथन को पहिले पढ़ो, जिसमें मैं साधारण शब्दों में इस बात की व्याख्या किये देता हूँ। इसमें सहज भक्ति की शिक्षा है। भक्ति कठिन नहीं होती, सरल होती है। अज्ञानी अपनी अज्ञानता के कारण इसे कठिन समझें तो बात दूसरी है। परन्तु जिनको सौभाग्य से गुरु का सत्संग प्राप्त हो गया है, वे यदि आज नहीं भी समझते हैं, तो कल अवश्य समझ जायेंगे। तब वह भक्ति उन्हें महीनों में खराद पर चढ़ा कर निखार देगी, इसमें वर्षों की मेहनत की आवश्यकता नहीं है। इतना कहने के बाद, अब उपरोक्त शब्द से विचार लेता हुआ मैं धीरे-२ आपको समझाता चला जाऊंगा।

यह जगत् क्या है? यह नाम और रूप का बना हुआ है। सत्पुरुष राधास्वामी दयाल ने मनुष्य के चोले में आकर अपना निज रूप दिखाया और निज नाम सुनाया। मैं नाम लेता हूँ या नाम का जाप करता हूँ। मेरी रग-२ में नाम समा गया है। मुँह से मैं चाहे न बोलूँ, परन्तु असलियत यह है :—

रोम रोम रग रग मेरी बोली ।
राधास्वामी राधास्वामी घुँडी खोली ॥

जिभ्या से नाम लिया। यह नाम एड़ी से चोटी तक, इस तरह समा गया या व्यापक हो गया, जिस तरह से कि जब मैं पानी पीता हूँ तो वह पानी एड़ी से चोटी तक बराबर पहुँचता है। वह नाम ही क्या हुआ, जिसका प्रभाव कुल शरीर पर न हो। मैंने सद्गुरु स्वरूप राधास्वामी का दर्शन किया। उनका तेजस्वी प्रभाव, बिलकुल उसी प्रकार मेरे अन्दर प्रवेश कर गया, जिस तरह कि जब तुम किसी शत्रु को देखकर, शत्रुता के भावों से भर जाते हो और आपका सारा शरीर प्रभावित हो जाता है।

मुझको काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का भय नहीं है, क्योंकि ये सब के सब सत्पुरुष राधास्वामी के चरणों में अर्पण हो चुके हैं। मुझ में अहंकार ज़रूर है, लेकिन किस बात का अहंकार है। मुझे इस बात का अहंकार है कि मैं सत्पुरुष राधास्वामी दयाल का एक सेवक हूँ और सेवक होने के नाते, हमेशा इनके पीछे-२ चलने की आदत सी हो गई है। मुझे क्रोध भी है, क्रोध के होने का मैं इन्कार नहीं करता। लेकिन क्रोध किस बात पर आता है? क्रोध इस बात पर आता है कि जिस तरह मुझे राधास्वामी दयाल की सेवा करनी चाहिए, वह नहीं हो रही है। मैं अपनी इसी कमी पर क्रोध करता हुआ, अपने रास्ते पर धीरे-२ चला जा रहा हूँ। मुझ में काम भी है। जिसमें काम ही नहीं वह आदमी क्या कर सकेगा। बिना काम की शक्ति के कोई क्या किसी का काम करेगा? सुनो काम क्या है?

काम काम सब कोई कहे, काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कामना, काम कहावे सोय ॥

काम कहते हैं इच्छा को। मेरी इच्छा यह रहती है कि मैं हमेशा, सच्चे अर्थों में हजूर महाराज का सेवक सिद्ध होऊँ। जिस तरह एक पतिव्रता स्त्री हर समय अपने पति का नाम रटा करती है, मैं भी उसी तरह नाम रटा करूँ :—

मैं अबला पीव पीव करूँ, **निर्गुण मेरा पीव।**
शब्द सनेही गुरु बिन, और न देखूँ जीव॥

जिस तरह स्वाति की बूँद के विचार में बेचैन पपीहा 'पी' 'पी' करता हुआ, आकाशमण्डल में मण्डलाया करता है, उसी तरह मैं भी गुरु का नाम ले-ले कर, अपनी इच्छा के भावों को गुरु के चरणों में अर्पण करता रहता हूँ।

गुरु मिल गया, अब किसकी इच्छा करूँ? इच्छा की हद हो चुकी, जैसे स्त्री को पति मिल गया, अब वह किसकी चाह मन में उठाये? चाह तो उस समय उठती है, जब तक कि गुरु नहीं मिलता।

'गुरु मिले फिर कहा कमाना'

मैं चकोर की सूरत में अपने गुरु के मुखड़े को रात और दिन देखा करता हूँ। जिस तरह भँवरा कँवल के चारों ओर चक्कर लगाता हुआ, उसकी सुगन्ध को पाकर, अपने को मस्ती में भूल जाता है, उसी तरह मैं भी गुरु की कँवल-रूपी मूर्ति को देखते हुए, उसका सच्चा प्रेमी बन गया। उसकी छवि आँखों में खुब गई। अब आँख वहाँ से हटती ही नहीं, उसके सिवाय और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता।

क्रियात्मक रूप से मैं स्त्री हूँ और गुरु मेरे पति हैं। जिस तरह स्त्री अपने पति के वीर्य को लेकर उसके रूप का लड़का पैदा करके बाहर खड़ा कर देती है, ठीक उसी तरह मैं भी गुरु के प्रभाव को अपने अन्दर लेकर उसके नाम, रूप और स्वरूप को प्रकट किया करता हूँ। अपने आपको छुपा कर रखता हूँ, क्योंकि स्त्री पर्दे में रहती है और गुरु को

ज़ाहिर किया करता हूँ।

मुझमें लोभ भी है, मैं लालची हूँ। लेकिन किस बात का लालची हूँ ? इस बात का लालची हूँ कि गुरु को अपना कर लूँ और गुरु मुझे अपना बना लें। इस बात का लालच रहता है कि गुरु की जब निगाह पड़े तो मेरे पर ही पड़े।

गुरु मूरति गति चन्द्रमा, सेवक चित चकोर।
आठ पहर निरखत रहूँ, गुरु मूरति की ओर॥

मुझमें मोह भी है। मोह कहते हैं आसक्ति को। मुझे गुरु से आसक्ति है। मैं गुरु पर इतना आसक्त हो गया हूँ कि वह मेरी जान है और मैं शरीर। तुम तो जानते हो कि जब जान निकलती है, तो शरीर को कितना कष्ट होता है, इसी तरह मेरी दशा है। मैं गुरु पर इतना आसक्त हूँ कि एक क्षण को भी उससे बेसुधि नहीं रह सकता।

"उठु बैठे खड़े उताने, कहें कबीर हम वही ठिकाने।"

देखा आपने ! कि मेरे काम, क्रोध, मोह तथा लोभ आदि सब के सब गुरु के ही हो गये। परायापन तो रहा ही नहीं। जब परायापन रहा ही नहीं, तो गुरु के साथ मन का सम्बन्ध कितना दृढ़ होगा और कितनी कड़ाई के साथ वह उनके चरणों में बन्धा रहेगा।

मैं जो भी काम करता हूँ गुरु के लिए करता हूँ। बोलता हूँ गुरु के लिए, लिखता हूँ गुरु के लिए, तुम लोगों से बातें करता हूँ तो वह भी गुरु के लिए। अगर गुरु का नाम शामिल है, तब तो मुझे खुशी मिलती है। यदि मेरे लिखने, पढ़ने तथा बोल-चाल में गुरु रूह बनकर शामिल नहीं होता तो मुझे वे लेख और कथन पसन्द नहीं आते।

एक बार की बात है कि मैं हैदराबाद में था। पण्डितों की एक मण्डली मेरे साथ शास्त्रार्थ करने आई। जब तक साधारणरूप से बात चलती रही मैं दिलचस्पी लेता रहा।

किन्तु जब पक्षपात का ज़िक्र आया और वे लोग 'मैं' और 'तू' पर उतर आये, तो मैं चुप रहा। एक साहिब ने प्रश्न किया "आप चुप क्यों हो गये? आपको उत्तर देना चाहिए।" मैंने उन साहिब को अलग ले जा कर कहा, "मैं जो कुछ बोलता हूँ गुरु के नाम के लिए और केवल गुरु ही के नाम पर। जब मेरे गुरु का नाम ही नहीं आता, तो बोलना कैसा?"

मेरी लड़ाई-भिड़ाई भी गुरु ही के नाम पर होती है। जब कभी बात-चीत में मेरी इन्द्रियाँ ज़ोर पकड़ जाती हैं और मुझे क्रोध आने लगता है, तब ही मन चुटकियाँ लेने लगता है और कहता है, "तू गुरु के आपे में है नहीं, तू अपने आपे में आ रहा है।"

मैं जो कुछ खाता-पीता हूँ, वह सब गुरु के अर्पण होता रहता है। लोग तो जानते हैं कि मैं ग्रास तोड़ कर अपने पेट में डाल लेता हूँ और पानी का प्याला अपने लिए पीता हूँ, यह देखने वालों की ग़लती है। मेरा एक-२ ग्रास तथा पानी की एक-२ बूँद जो मेरे अन्दर जाती है, उसमें गुरु की भक्ति का रस रहता है मैं वास्तव में यज्ञ करता हूँ। मेरा खाना-पीना आत्मिक यज्ञ है। जिस तरह यज्ञ में ईश्वर का नाम लेकर आहूति दी जाती है, उसी तरह से मैं अपने गले से एक-२ ग्रास उतारता रहता हूँ। कोई नया कपड़ा मैं बग़ैर गुरु के अर्पण किये अपने शरीर पर नहीं डालता। इसी प्रकार, कोई भी काम जो मैं करता हूँ, अपने लिए नहीं करता। सब का सब गुरु के लिए ही होता है। 'न चाचा जी का मित्र न मामा जी का शत्रु।'

"मानिये सकल राम के नाते।"

यह वचन सुमित्रा का है जो उसने बनवास में जाने से पूर्व अपने पुत्र लक्ष्मण को कहे थे, "हे लक्ष्मण! वह स्त्री

पुत्रवती है, जिसका पुत्र भक्त हो। राम तेरे पिता और सीता तेरी माँ हैं, जहाँ राम वहीं अवध। तू बड़ा भाग्यशाली है। मैं प्रत्यक्ष रूप से तेरी माँ ज़रूर हूँ पर मेरे विचार को छोड़-कर अपने इष्ट की सेवा का फल उठा।

संसारी कहते हैं कि मैं गृहस्थियों से अधिक काम कर रहा हूँ किसके लिए ? इसमें मेरा स्वार्थ शामिल है या गुरु की सेवा का निष्काम कर्म ? मैंने अपने रहने के लिए एक मकान तक भी नहीं बनवाया और न ही मेरी कोई जायदाद है। मेरा अपना जीवन भी अपना नहीं है। यह गुरु का ही है ! मेरा कोई काम अपना नहीं सब गुरु का ही है। इस बुढ़ापे में भी इधर का मारा उधर और उधर का मारा इधर आता-जाता हूँ। क्यों ? क्या अपने लिए ? मेरा मुझमें है ही क्या ? हाथ, पाँव, दिल, दिमाग़, रक्त, मांस सभी तो गुरु के हैं। वह जिस तरह चाहें उसे रखें। मुझे नर्क में ले जायें या स्वर्ग में। न तो उसका भय है न इच्छा।

जब अपना कुछ है ही नहीं, सब कुछ उसी का है तो फिर झगड़ा क्या ? मेरे बाल-बच्चे मेरे नहीं हैं, ये सब **सत्पुरुष राधास्वामी दयाल** के ही हैं। जिस प्रकार मैं उनसे **प्यार का व्यवहार** करता हूँ, उसी प्रकार मेरा व्यवहार सब सत्संगियों के साथ भी वैसा है। मेरी लड़की अपनी लड़की नहीं, अपितु राधास्वामी दयाल की है। मुझे इसलिये मिली है कि मैं उनके नाम पर इसकी सेवा करूँ। लोग कहते हैं "घर में दिया जला कर फिर मन्दिर में जलाना।"

मैं गुरु के इस प्रेम के मण्डल को अपने ही घर से बनाना शुरू करता हूँ और आम सत्संग के द्वारा इसको बढ़ाता जाता हूँ। सीमित मण्डल अपने आप ही धीरे-२ बढ़ता जा रहा है। बढ़ता चला जाय, यदि इसमें गुरु की रज़ामन्दी है और मैं उनकी आज्ञा का पालन करता जाऊंगा।

ये छोटी-२ बातें हैं, जिनके प्रतिदिन के व्यवहार से आदमी अपने जीवन की गढ़त सुगमता से कर सकता है और भक्ति के पक्ष को सहज, सुगम तथा क्रियात्मक बना सकता है।

जिस समय इस शरीर का मन्दिर गुरु के नाम पर अर्पण हो जाता है और उसकी मूर्ति स्वयं आकर उसमें विराजमान हो जाती है, तब न कुछ करना न धरना। घट के द्वार स्वयं खुलने शुरू हो जाते हैं। कभी सहस्रदल कँवल की सैर है, तो कभी त्रिकुटी का दृश्य दिखाई देता है। कभी शून्य समाधि का आनन्द आता है, तो कभी भँवरगुफा में इसके नाम की बंसी बजती है। कभी सत्लोक में बीन की धुनि की 'सत' 'सत' की आवाज़ सुनाई देती हुई विशेष अस्तित्व, विशेष स्वरूप का आनन्द दे जाती है। यह है सहज भक्ति।

मनुष्य और उसकी छाया

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

ईश्वर ने मनुष्य को बनाया। देखा कि वह अकेला है। मनुष्य सूर्य के प्रकाश में घूम रहा था। उसके शरीर की छाया पाँव से लगी हुई नाच रही थी। वह कभी छोटी हो जाती तो कभी बड़ी। कभी इतनी घट जाती कि मनुष्य के पंजे से भी छोटी हो जाती और कभी इतनी बढ़ जाती कि मनुष्य उसके सामने एक बच्चा प्रतीत होने लगता। कभी वह दायें हो जाती, कभी बायें। जब मनुष्य अपनी उस छाया को पकड़ने जाता, तो छाया फुदकती हुई आगे की ओर लम्बे डग भर कर भाग निकलती। जब वह मनुष्य पीठ फेर कर भागता तो वह उसके पीछे दौड़ने लगती।

ईश्वर यह दृश्य देखकर हँसा। वह मनुष्य से बोला, "क्या तू चाहता है कि मैं तेरे लिए इसे पकड़ दूँ?"

मनुष्य ने कहा, "हाँ! मैं अकेला हूँ। यदि यह छाया मेरे पास रहे, मेरे साथ बोले-चाले तो मुझे सुख मिलेगा। यह मेरे लिए सामग्री इकट्ठी करेगी, उसकी सम्भाल रखेगी और मुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी।"

ईश्वर ने कहा, "यह छाया तुमसे लिपट जायेगी।"

मनुष्य बोला, "कोई बात नहीं मैं इसे लिपटा लूंगा।"

ईश्वर ने मुस्करा कर कहा, "यह तुम्हें हँसायेगी, रुलायेगी। तुम्हें चंचल बना देगी।"

मनुष्य बोला, "मैं हँस लूँगा, रो लूँगा। मैं चंचल हो लूँगा।"

ईश्वर ने हँस कर छाया को हाथ लगाया और उसने स्त्री का रूप धारण कर लिया। ईश्वर ने उसे पकड़ कर मनुष्य को दे दिया और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गया।

स्त्री को पाकर मनुष्य बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसे साथ लाया और घर बनाकर उसमें रहने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनों में वह स्त्री से ऊब कर दुःखी होकर ईश्वर को स्मरण करने लगा। ईश्वर ने प्रकट होकर पूछा, "अब तू क्या चाहता है?"

मनुष्य बोला, "यह बड़ी ही बातूनी है। मैं इसकी बकवास से ऊब गया हूँ। इसे फिर से छाया बना दो अब वह फिर छाया हो गई। मनुष्य प्रसन्न होकर घर आया। घर में एक दम उदासी छाई हुई थी, मनुष्य दुःखी हो गया। सोचा एक से तो दो अच्छे थे। कम से कम किसी से बात-चीत तो होती थी। उसने ईश्वर से प्रार्थना की। ईश्वर फिर प्रकट हुआ। मनुष्य बोला, "छाया को फिर से पकड़ दो, उसके बिना सुख नहीं।"

ईश्वर ने छाया को पकड़ कर मनुष्य को दे दिया। अब दोनों फिर साथ रहने लगे।

उसके पश्चात् स्त्री ने कई पुत्र तथा पुत्रियों को जन्म दिया। उनका पालन-पोषण करने के लिए मनुष्य को बहुत मेहनत करनी पड़ी दुःख और कष्ट सहन करने पड़े। उसने ईश्वर को बुला कर कहा, "यह तो महा दुःखदायी है, ले जा इसे वापिस।"

ईश्वर को अबकी क्रोध आया। वह बोला, "मूर्ख! मैंने पहिले ही तुझे बता दिया था कि वह बढ़ेगी, घटेगी, दौड़ेगी, रुकेगी और तेरे पीछे पड़ेगी। अब मैं क्या कर

सकता हूँ ? जा, जो तेरी समझ में आये कर।"

तब मनुष्य निराश होकर कुछ दिन तो जिया, फिर रोगी होकर मर गया।

ईश्वर हँसा, "मूर्ख मनुष्य को छाया को वश में रखने की भी बुद्धि नहीं थी। मैं क्या करूँ! इसमें मेरा क्या दोष। उसने जैसा किया वैसा पाया।"

शब्द

1) प्रेम छाया से किया, छाया का गुण जाना नहीं।
तूने अपना और उसका, रूप पहचाना नहीं ॥1॥
2) ब्रह्म में माया है शक्ति, शक्ति दुःखदायी नहीं।
भर्म से बलवान ने, बल पाके बल माना नहीं ॥2॥
3) माया छाया एक सी, दौड़ो तो दौड़े और चले।
रुकने से रुकती है, इससे भय कभी खाना नहीं ॥3॥
4) जान लो, पहचान लो और अपनी शक्ति मान लो।
मान कर पहचान कर, भ्रान्ति को चित लाना नहीं ॥4॥
5) राधास्वामी संग कर कुछ दिन, कि तुमको ज्ञान हो।
ज्ञान पाकर भूल के चक्कर में, फिर आना नहीं ॥5॥

महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज की संक्षिप्त जीवनी

लेखक :
श्री मोहन लाल नय्यर
के. 10, कीर्ति नगर, नई देहली।

जन्म :

महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज, उन-इने-गिने पुरुषों में से एक थे, जो भूली-भटकी आत्माओं को सच्चा मार्ग दिखाने के लिए सैकड़ों वर्षों बाद प्रकट हुआ करते हैं। आपके नाम और काम से न ही केवल आत्मिक जगत् का बच्चा-२ प्रेम करता है, किन्तु शिक्षित वर्ग भी भली-भाँति परिचित है।

आपका जन्म माह फरवरी 1860 को ग्राम पुरा कानूनगोयान ज़िला मिर्ज़ापुर (राज बनारस) के प्रतिष्ठित कायस्थ कुल में हुआ। शिवरात्रि के दिन पैदा होने के कारण आपका नाम शिवव्रत लाल रखा गया। आपके दादा मुन्शी कंवल किशोर साहिब बनारस के महाराजा के वकील थे। आपके पिता श्री शिव सम्पत लाल ज़मींदारी का काम व देख-भाल करते थे। आपकी माता बचपन में ही परलोक सिधार गई थीं। सौतेली माँ ने आपका पालन-पोषण किया।

आप बचपन में चेचक के भयंकर रोग से बीमार हुए। पूरे शरीर पर चेचक के दाग़ पड़ गये और चेहरे का रंग साँवला पड़ गया।

आपका कद औसत दर्जे से कुछ बड़ा था। शारीरिक बनावट की दृष्टि से सिर डेढ़ गुणा बड़ा था, माथा चौड़ा और कान बड़े-२ थे। नाक की बनावट ऐसी मालूम होती थी कि सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु सूँघने की शक्ति रखती थी। आँखें ऐसी तेज़ दूरबीन थीं कि सामने से जाने वाले की मानसिक स्थिति भाँप लेती थीं। मूछें बड़ी-२ तथा धनुषाकार प्रतीत होती थीं। चेहरा अति तेजवान था, प्रसन्नता शरीर से फूट-२ निकलती प्रतीत होती थी।

शिक्षा :

बचपन में आपने हिन्दी की शिक्षा पाई और पिता जी की देख-रेख में आपकी शिक्षा शुरू में ज्ञानपुर ज़िला भदोई में कक्षा चार तक हुई। आप एक तीव्र बुद्धि के विद्यार्थी थे। कक्षा चार पास कर लेने के बाद, आप चुनार तहसील ज़िला मिर्ज़ापुर में वज़ीफे का इम्तहान देने गये। बरसात का मौसम था। रास्ते में कई बार पानी बरसा। पुरा कानून-गोयान और चुनार के बीच कई बरसाती नाले पड़ते थे, जो पानी से भर गये थे। आपको उनको पार करके परीक्षा देने जाना था। इन कठिन रास्तों को पार करते-२ जब आप परीक्षा देने के स्थान पर पहुँचे, तो परीक्षा कब को शुरू हो गई थी पर्चा लगभग समाप्त हो गया था। अतः आपको स्कूल इन्सपैक्टर ने बड़ी सहानुभूति के साथ परीक्षा न देने की राय दी। आपको परीक्षा न देने का बहुत ही रंज हुआ। किया भी क्या जा सकता था। आपने वापिस उसी समय जाने की मन में ठान ली। काफी देर हो चुकी थी घर पहुँचना कठिन सा था। परन्तु आप चल ही पड़े घर की ओर। रास्ते के कष्टों का ख्याल, वज़ीफे की परीक्षा न देने का दुःख तथा इन्सपैक्टर साहिब के सहानुभूतिपूर्ण कहे गये शब्द आपके दिल में प्रभाव डाल रहे थे। दिन टल

चुका था। बरसात की बौछारों का सहन करते हुए तथा नालों को चीरते हुए आप चलते गये। जब गाँव थोड़ी ही दूर रह गया, तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। अन्धेरा छा गया, बिजली चमक-२ कर डराने लगी। कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। आप रास्ता भूल गये।

ईश्वर की कृपा। बिजली के कौंधे के साथ अचानक एक दिव्य रूप का मनुष्य सामने आकर प्रकट हुआ। अधेड़ आयु, सिर पर सफेद पगड़ी, कमर में धोती और हाथ में लाठी लिए हुए था। आप हैरान होकर सोचने लगे 'ऐ मालिक! यह क्या रहस्य है? मैंने तो आज तक इस तरह का आदमी देखा नहीं.यह कहाँ से आ गया?" फिर भी आप डरे नहीं, उसके निकट चले गये। वह आदमी बोला, "लड़के बोलो! तुम्हें कहाँ जाना है? इस अन्धेरी रात में तुम कहाँ से आ रहे हो?"

आपने उत्तर दिया, "मुझे पुरा कानूनगोयान जाना है और चुनार से आ रहा हूँ।"

उसने कहा, "बच्चे! रास्ता भयानक है, रात भी अन्धेरी है, पानी भी बरस रहा है। ऐसे समय में तुम्हें अकेला नहीं निकलना चाहिए था। खैर अब चलो, मैं तुम्हें रास्ता दिखाए देता हूँ। जहाँ-जहाँ कहूँ, वहाँ-वहाँ सम्भल कर चलना। वह आपके आगे-२ चलने लगा आप उसके पीछे-२। आपको उससे बात करने का अवसर ही नहीं मिला। आप ध्यान से उस रहस्यमय व्यक्ति को देखते रहे। परन्तु इस बात को पहिचान नहीं सके कि आपका पथ-पर्दशक ज़मीन पर पैर रख रहा था या ऊपर ही ऊपर चल रहा था। फिर भी आपको ढारस था कि वह आपके आगे-२ चल रहा था। रास्ते में जहाँ कहीं भी पानी थोड़ा गहरा होता तो वह आवाज़ देता, "लड़के सम्भल कर चलना

यहाँ पानी गहरा है, कपड़े सम्भाल कर चलो।" जहाँ रास्ता भयानक होता तो वह कहता कि यहाँ से दाईं ओर चलो, वहाँ से बाईं ओर चलो आदि-२। आप चुपचाप उनकी आज्ञा का पालन करते गये। अन्त में आप अपने गाँव के पास पहुँच गये जहाँ कोई भय नहीं था। उस आदमी ने कहा, "अब तुम घर चले जाओ। मैं अब जाता हूँ।" यह कहते ही वह एक दम दृष्टि से ओझल हो गया। वह कहाँ चला गया? आप बिलकुल नहीं जान सके। आप सलामती से घर पहुँच गये।

घर पर आपके पिता जी बहुत चिन्तित थे। आपको देखकर उनकी जान में जान आई। खैरियत पूछी। आपने सारी घटनाएँ ज्यों की त्यों बता दीं। उस रहस्यमय पुरुष की बात भी बताई। आपके पिता जी बोले, "बेटे! वह कोई मनुष्य नहीं था, किन्तु सरहद का देवता था। सरहद के देवता अपनी सरहद की देखभाल किया करते हैं और भूले-भटके आदमियों को रास्ता दिखाते रहते हैं।

विद्यार्थी जीवन में आप दूसरे विद्यार्थियों की तरह दिखावट तथा सज-धज पसन्द नहीं करते थे। आप बात-चीत बहुत कम किया करते थे, आवश्यकता से अधिक बोलना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। खेल में उन्हें कबड्डी पसन्द थी। आपको आत्मसम्मान का बड़ा ध्यान रहता था, इसलिये आप अपने आपको हमेशा संयम में रखते थे। इन गुणों के कारण अध्यापक आपका बहुत सम्मान करते थे। एक दिन एक मास्टर साहिब किसी काम से कक्षा से कुछ देर के लिए बाहर चले गये। उनके बाहर जाते ही लड़कों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। आप भी उन्हें देखकर शोर मचाने में शामिल हो गये। जब मास्टर साहिब वापिस कक्षा में आये, तो उन्होंने सबको डाँट-डपट के चुप करा दिया

और लड़के अपनी-२ जगह पर बैठ गये। उन्होंने आपको अपने पास बुला कर कहा, "शिव ! तुम्हारे लिए यह काम उचित नहीं। समझ में नहीं आता कि तुम कैसे इस हुल्लड़-बाजी में शामिल हो गये। मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी। तुम साधारण लड़के नहीं हो। कुदरत ने तुम्हें दुनिया में किसी विशेष काम के लिए भेजा है। तुम दूसरे लड़कों की नकल मत किया करो। देखो बेटे ! भविष्य में फिर ऐसी ग़लती न होने पाये।"

इस आदेश का आपके चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस दिन से आप पूरे तौर पर सावधान रहे और अपने उस मास्टर साहिब की हिदायत का सदैव क्रियात्मक रूप से पालन किया और जीवन भर उस मास्टर साहिब के कृतज्ञ रहे।

आपने अंग्रेज़ी भाषा में शिक्षा तहसील चुनार से प्राप्त की और वहाँ से ही ऐन्ट्रेंस पास किया। इसके पश्चात् एम० ए० तक की सारी शिक्षा इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से की। नन्दूसिंह जी महाराज अपने लेख में लिखते हैं कि ऐण्ट्रेंस पास करने के बाद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी०ए० करके एल०एल०बी० में दाखला लिया। जब परीक्षा का समय आया आप अपने भतीजे के पास ठहरे हुए थे। आपके भतीजे वकील थे। इस दौरान में उनके पास एक मुकद्मा आया। मुकद्मे करने वाला व्यक्ति बोला कि किसी ने उसकी बेइज्ज़ती की थी और वह अपनी बेइज्ज़ती का बदला लेना चाहता था। आपके वकील भतीजे ने उस आदमी को कहा, "तुम्हारा मुकद्मा बहुत कमज़ोर है तुम जीत नहीं सकोगे।" उस आदमी ने कहा, "तो फिर मुझे क्या करना चाहिए ?" वकील साहिब ने उत्तर दिया, "अपने कपड़े फाड़ो, सिर पर ज़ख्म कर लो और शरीर को जगह-२

खरोंच डालो। ऐसा करने के बाद फिर मेरे पास आना तब तुम्हारा केस बनेगा।"

उस आदमी के जाने के बाद आपने अपने भतीजे से पूछा कि क्या यही न्याय है ?

वकील भतीजे ने उत्तर दिया, "वकालत में तो यही करना पड़ता है नहीं तो वकालत चलती ही नहीं।"

इस घटना के बाद आपने उसी समय वकालत की सभी पुस्तकें फेंक दीं और बिना परीक्षा दिये घर वापिस चले गये। इसके बाद उन्होंने एम० ए० में दाखला लिया और एम० ए० की परीक्षा पास की। विद्यार्थी जीवन में ही आप आध्यात्मिक विचारों की छान-बीन और सोच-विचार में बहुत समय दिया करते थे।

विवाह तथा सन्तान :

जिस समय आप एण्ट्रेन्स क्लास में पढ़ रहे थे, आपके विवाह का ज़िक्र चला। आप बार-२ मना करते रहे। अन्त में, आपके पिता जी ने आपसे सलाह लिये बिना आपका विवाह कर देने का निश्चय कर लिया। अतः तिलक का दिन नियत करके आपको चुनार से बुलाने के लिए एक आदमी को भेज दिया। वहाँ पर जब आदमी सन्देश लेकर गया, तो आपने गाँव में जाने से इन्कार करते हुए कहा, "मुझे अभी विवाह की आवश्यकता नहीं है।" इस पर वह आदमी बहुत बिगड़ा और उसने आपको समझाते हुए कहा, "देखो ! इस समय तुम्हारा गाँव जाना बहुत ही ज़रूरी है। तुम्हारे गाँव न जाने से दोनों घरों की बेइज्ज़ती होगी। तिलक वापिस जाना तो अपशकुनी समझी जायेगी।" अतः मन को दबाते हुए विवाह के लिए राज़ी हो गये। तिलक हो गया और कुछ समय बाद आपका विवाह मुन्शी माता-

प्रसाद ज़मींदार बुधवारी लचवारा, ज़िला इलाहाबाद की सुशील और सुन्दर कन्या जसोदा देवी से शुभ मुहूर्त में हो गया। उसी साल आपने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास की और उत्तर प्रदेश में विद्यार्थियों में प्रथम रहे।

आपके तीन लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुआ। लड़का तो बचपन में ही परलोक सिधार गया। तीन लड़कियाँ सहदेई कुँवर, चुनमुन देवी तथा मुनमुन देवी मौजूद हैं। सहदेई कुँवर का विवाह बा० हरसहाय ज़मींदार गोरखपुर से हुआ। चुनमुन देवी का विवाह बा० बशेश्वर दयाल के सुपुत्र श्री गौरी शंकर लाल अख्तर—सम्पादक मानसरोवर इलाहाबाद से हुआ। श्रीमती मुनमुन देवी इकबाल बहादुर बहराइच के सुपुत्र प्रोफेसर ज़ालिमप्रसाद से ब्याही गई।

पत्नी :

आपकी पत्नी श्रीमती जसोदा देवी बड़ी बुद्धिमती तथा उदारहृदय थीं। एक बार की बात है कि पड़ौस में एक अनाथ लड़की का विवाह होने वाला था। उसको देने के लिए घर पर कोई ज़ेवर नहीं था। श्रीमती जसोदा देवी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने तुरन्त सुनार को बुलाया और अपनी भारी सोने की नथ उसको देते हुए कहा कि उसकी दो नथ बना दे। उनमें से एक नथ लड़की को उपहार के रूप में दे दी। मोहल्ले के लोगों ने जसोदा देवी की उदारता की बहुत प्रशंसा की। परन्तु घर वालों को पता चला कि उन्होंने अपने सुहाग की नथ तुड़वा ली तो उन्हें बहुत बुरा लगा। परन्तु जसोदा देवी ने भोलेपन से मुस्करा कर उन्हें शान्त किया। वह बोलीं, "यदि आप लोगों के घर में ऐसी स्थिति में किसी का विवाह होता, तो आप क्या करते ?"

आप प्राय: कहा करते थे कि उनके जीवन को सुधारने वाली प्रथम गुरु उनकी पत्नी ही थीं। ननिहाल में आपकी नानी साहिबा ने आपसे बहुत कहा कि आप उनकी जायदाद अपने नाम करा लें, क्योंकि नानी साहिबा की जायदाद के एकमात्र वारिस आप ही थे। मगर उस जायदाद पर उनके परिवार के और सदस्यों की भी नज़र थी। दूसरी बात यह थी कि आप बिना परिश्रम की औरों की कमाई लेना अनुचित समझते थे। अत: उन्होंने अपनी नानी साहिबा को बड़े प्यार से समझाया और जायदाद नहीं ली। आपकी धर्मपत्नी का 1904 में स्वर्गवास हो गया।

दीक्षा :

दयालस्वरूप नन्दू सिंह जी ने बहुत वर्षों तक महर्षि जी की सेवा की। आप लिखते हैं कि महर्षि जी बचपन से ही ईश्वर-प्राप्ति की धुन में रहते थे। इस क्रम में आप 1888 में हज़ूर महाराज राय सालिगराम साहिब, संस्थापक राधास्वामी मत के पास आगरा पहुँचे और उनसे दीक्षा ली। जब आप पहिली बार हज़ूर महाराज जी के दर्शन करने गये, तो उन्होंने आपको अपने पास बिठाया और लोगों को कहा, "यह व्यक्ति बड़ा भारी लेखक बनेगा, जो सन्तमत की शिक्षा को अपने साहित्य द्वारा फैलायेगा। ब्रह्म ज्ञान के गूढ़ से गूढ़ विषय इसकी लेखनी से सुगम हो जायेंगे।" हज़ूर महाराज जी की भविष्यवाणी अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई। आप आध्यात्मिक जगत् में सबसे आगे बढ़े और तीन हज़ार से अधिक पुस्तकें आध्यात्मिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों पर लिखीं तथा नाविल ड्रामा, उर्दू की गज़लें व हिन्दी में हज़ारों शब्द लिखे जो 'शब्द गुंजार' तथा 'शिव शब्द सागर' में प्रकाशित हैं।

दूसरी बार जब आप हज़ूर महाराज जी से मिले और

उन्हें फूलों का हार पहनाया, तो हजूर महाराज जी आपसे बोले, "हार भेंट करना और प्रसादी चढ़ाना तो साधारण सत्संगियों के लिए होता है। आप जैसे विशेष सत्संगियों के लिए यह चीजें शोभा नहीं देतीं।"

तीसरी बार आपने हजूर महाराज के दर्शन कुछ घण्टों के लिए ही किये। हजूर महाराज जी ने पूछा, "खाना खाया?"

आपने उत्तर दिया, "टूँडला स्टेशन पर खा लिया था।"

फिर हजूर महाराज ने कहा, "दूध तो पी लेते हो?"

आपके हाँ या न जवाब देने से पहिले हजूर ने अपने हिस्से का दूध मँगाया उन्होंने थोड़ा दूध पिया और बाकी आपको पिलाते हुए कहा, "शारीरिक दृष्टि से तुममें और मुझमें भले ही अन्तर रहा हो, परन्तु मानसिक दृष्टिकोण से कोई अन्तर नहीं। जाओ प्रचार का काम पूरा करो। मैं हमेशा तुम्हारे अंग-संग रहूंगा। तुम जहाँ भी जाओ, सत्संग कराते रहो।" यह कहकर उन्होंने आपके सिर पर दया का हाथ फेरा और आशीर्वाद दिया। उसी दिन ही आपने प्रण कर लिया कि जब तक प्रचार का कार्य पूरा न होगा तब तक आप हजूर महाराज के दर्शनों के लिए नहीं जायेंगे। आप इस प्रण पर आजीवन बने रहे।

एक बार हजूर महाराज जी ने आगरे में ठहरने के समय आपसे कहा, "शिवब्रत लाल! तुम शहद की मक्खी की तरह फूलों पर बैठने और उनका आवश्यक रस लेने का अमल सीखो। मगर फूलों पर इस तरह बैठो कि उन पर तुम्हारे पाँव के धब्बे तक का निशान न होने पाये। यह सूक्ष्म चित्तवृत्ति वालों का गुण है। दूसरी तरह की मक्खियों के गुण ग्रहण न करो। वह तो जब बैठेंगी गन्दगी पर ही

बैठेंगी। वह गन्दगी पर बैठकर पहिले तो स्वयं उसका प्रभाव लेंगी, फिर लोगों के भोजन पर बैठकर उसे अपवित्र कर देंगी। यह आदत सेवक और गुरुमुख के लिए नहीं है।

नौकरी व व्यवसाय :.

शिक्षा समाप्त होने पर आपने रियासत रीवां में ताल्लुकेदार के पद पर नौकरी की, क्योंकि आपके दोनों भाई भी रीवां रियासत में ही नौकर थे। इस पद की शान-शौकत आपको पसन्द नहीं आई। आपने थोड़े ही समय के लिए वहाँ काम किया। फिर जब आपको यह महसूस हुआ कि वहाँ घूँस न लेने के कारण कई कठिनाइयाँ हैं, तो आपने वहाँ त्यागपत्र दे दिया।

रीवां से आप कलकत्ता चले गये, वहाँ रहकर व्यापार में लगे रहे, लेकिन उसमें भी न रह सके, क्योंकि व्यापार में बहुत ही पूँजी की आवश्यकता थी, जिसका प्रबन्ध करना उस समय आपके लिए कठिन था। व्यापार बन्द करके आप वापिस घर लौट आये।

उसके बाद आप मिशन हाई स्कूल मिर्ज़ापुर में हैड-मास्टर के पद पर नियुक्त हुए। आप बहुत ही परिश्रम से काम करते, स्कूल से कभी छुट्टी नहीं लेते। छुट्टियों में भी कभी घर आते कभी स्कूल के कार्यों में ही लगे रहते। जिस दिन आपको वेतन मिलता और दूसरे अध्यापकों को भी वेतन बाँटा जाता तो सबको बुलाकर आप पूछते, "क्या किसीको अधिक पैसे की ज़रूरत है? यदि है तो मेरा वेतन मौजूद है। ऐसा करने के बाद वेतन से जो बच जाता, उसे घर ले जाकर ताक पर रख देते और आपकी धर्मपत्नी उस धन में से आवश्यकता के अनुसार खर्च करती रहतीं। आप अपने पास पैसा बिलकुल ही नहीं रखते थे।

मिर्ज़ापुर के अतिरिक्त आपको बरेली, बनारस तथा

चुनार के स्कूलों में भी काम करने का अवसर मिला। 1896-97 में जब आप आर्य समाज हाई स्कूल बरेली में थे तो आपने "हमारी माताएँ", "सच्ची देवियाँ", "राजस्थान की वीर रानियाँ", "सतो वृत्तान्त", "राजपूतनियों के करतंव", "चितौड़ की चढ़ाइयाँ", "हिन्दु माताएँ", "पृथ्वीराज", "राजपूतों की लड़ाईयां", "आल्हा ऊदल", "रामायण", "महाभारत" आदि पुस्तकें लिखीं, जो बहुत ही प्रचलित हुई।

धर्मपत्नी के परलोक सिधारने पर आपके कोमल हृदय को गहरी चोट लगी, सब कुछ छोड़-छाड़ कर इधर-उधर घूमने लगे। घूमते-२ वह हरद्वार पहुँच गये। पं० केशव देव जी शास्त्री मैनेजर सतधर्म प्रचारक प्रैस हरद्वार आपके परम मित्र थे और जहाँ महात्मा मुन्शी राम जी के द्वारा आपकी पुस्तकें छपा करती थीं, वहाँ उनसे भेंट हुई और आप कुछ दिन वहाँ रहे।

अचानक महात्मा हंसराज जी और लाला लाजपत राय जी उन दिनों हरद्वार आये हुए थे। दोनों महानुभाव उनसे मिले। दोनों ही आपके नाम तथा आपके काम से परिचित थे। दिल बहलाने के लिए उन्होंने "आर्य गजट" लाहौर के सम्पादन का कार्य आपके सुपुर्द किया। उन दिनों आर्य समाज में "घास पार्टी" और "मांस पार्टी" की टक्कर हो रही थी।

आपके शक्तिशाली लेखों ने थोड़े ही समय में दोनों पार्टियों के सदस्यों पर इतना प्रभाव डाला कि दोनों के झगड़े समाप्त हो गये। आप अपने लेखों में पौराणिक शिक्षा को दृष्टि में रखा करते थे। श्री रामचन्द्र जी, श्री कृष्ण भगवान्, कबीर साहिब, नानक साहिब की महिमा का सिक्का आर्य [illegible] में प्रकाशित लेखों द्वारा जमाया।

यदि आप चाहते तो उन लेखों को चालू रखते, क्योंकि आर्य समाज में आपकी धाक बन्ध गई थी। मगर कुदरत को ऐसा करना मंजूर नहीं था। अचानक आर्य समाज में धार्मिक खण्डन का दौर शुरू हो गया। श्री राम, श्री कृष्ण तथा और धर्मों के महापुरुषों के विरुद्ध व्याख्यान होने लगे, जिससे वातावरण बिगड़ गया। चूँकि आप खण्डन से हमेशा घृणा करते थे अतः आपने फौरन 'आर्य गजट' के सम्पादक पद से त्यागपत्र दे दिया।

इसके बाद आपने "साधु" नाम का मासिक पत्र लाहौर में चालू किया, जिसमें ध्यान, योग, सांख्य, प्रेम, भक्ति, विवेक-विचार, कर्म-धर्म, वेद-पुराण, गीता शास्त्र आदि विषयों पर प्रकाश डाला जाता था। "साधु" मासिक पत्र को लोगों ने इतना पसन्द किया कि थोड़े ही दिनों में इसके पढ़ने वालों की संख्या हज़ारों तक पहुँच गई।

आपने 'साधु' मासिक पत्र में आर्य समाज के कुछ नुक्सों को दूर करने की नीयत से कुछ लेख प्रकाशित किये। मगर सुधार तो दूर रहा आर्य समाज में बड़ी खलबली मच गई। उनको बड़ा क्रोध आया और आवेश में आकर उन्होंने "साधु" समाचार पत्र के कार्यालय में आग लगा दी, जिससे बहुत ही हानि हुई। आप विरोधियों का इस प्रकार का हैवानी व्यवहार देखकर भी शान्त रहे और चुपचाप अपने कमरे में बैठ गये।

उन दिनों परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज इस घटना का समाचार सुनते ही फौरन अपने गुरु-सद्गुरु को देखने के लिए लाहौर पहुँचे। उन्हें देखते ही आप बोले, "फकीर इस समय सब मेरे विरोधी हो रहे हैं तुम यहाँ क्या करने आये हो?"

फकीर ने उत्तर दिया, "महाराज! मैं दुनिया की

प्रसन्नता या घृणा के ख्याल से आपके पास नहीं आया, किन्तु उस मन के आकर्षण से आ रहा हूँ, जो वर्णन से बाहर है। वह आकर्षण उस आग की तरह है, जो न लगाने से लगती है और न बुझाने से बुझती है।" आप अपने परम शिष्य के प्रेम को देखकर गदगद हो गये और उन्हें छाती से लगाकर कहा, "फकीर! जोवन भर तुम्हारा साथ दूंगा।" और हुआ भी ऐसा।

अन्त में आपको सच्चाई और नेकनीयती रंग लाई। आपकी कलम में वह जादू था कि शायद ही और कहीं हो। आप पंजाब भर में सर्वप्रिय हो गये।

आपने एक जगह लिखा है :—

मेरे जीवन के हालात घटनाओं से भरे हैं। राधास्वामी मत में शामिल होने के कारण, आर्य समाज की ओर से मुझ पर जगह-२ अनुचित हमले हुए और मुकद्मे चलाये गये मुझे लोग जाली एम० ए० तथा राधास्वामी कह-२ कर गालिवाँ देने लगे। मैंने यह सब सहन किया और मन को काबू करके क्रोध को रोक के केवल हजूर महाराज राय सालिग राम साहिब मेरे परम गुरु, परम इष्ट के रूप और उनकी शिक्षा की ओर दृष्टि रखी। इस विरोध का बड़ा अच्छा परिणाम निकला। मुझमें दृढ़ता आती गई। हजूर महाराज ने अन्तर में दया का परिचय देना आरम्भ किया और मैंने निन्दकों की दया से सद्गुरु को प्राप्त कर लिया। यदि मेरे निन्दक मेरे से इस तरह का व्यवहार न करते, तो मैं शायद हजूर की दया का पात्र न बनता। मैंने कभी भूलकर भी आर्य समाज का विरोध नहीं किया। आर्य समाज का उज्ज्वल पहलू तथा महर्षि दयानन्द जी का महान् व्यक्तित्व सदा मेरी दृष्टि के सामने रहता था। मैं सबका सम्मान करता रहा और अपने अज्ञानी निन्दकों को सच्चे हृदय से

दुआ देता रहा।

कबीर निन्दक न मरे, जीवे आदि जुगाद।
हम तो सद्गुरु पाईया, निन्दक के परसाद ॥

उस समय आध्यात्मिक विचारों की वह बाढ़ आई कि आप एक के बाद दूसरा मासिक पत्र शुरू करते गये उनमें से 'सन्त सन्देश', 'सरस्वती भण्डार', 'लक्ष्मी भण्डार', 'मार्तण्ड', 'तत्त्वदर्शी', 'पंजाबी सूरमा' आदि बहुत प्रसिद्ध हुए और जिनके द्वारा देश के कोने-२ में आपके आध्यात्मिक विचारों का बहुत प्रचार हुआ।

विदेश यात्रा :

सन् 1911 में आपको जोश आया, आप सब काम छोड़कर विदेश-भ्रमण के लिए निकल पड़े। जापान तथा अमेरिका आदि में जगह-२ पर सन्तमत की शिक्षा का प्रचार किया। शिकागो यूनिवर्सिटी (संयुक्त राज्य अमेरिका) ने आपको एम.ए., एल.एल. डी. की डिग्री प्रदान की। आपने वहाँ भूले-भटके, भ्रम में पड़े हुए अशान्त लोगों को आत्मिक शान्ति प्रदान की।

विदेश-भ्रमण के बाद आपने कुछ वर्ष लाहौर में काम किया। इसी दौरान में आपने एक पुस्तक लाईट आन आनन्द योग (Light on Anand Yog) पर अंग्रेजी भाषा में लिखी। आपने 'सन्त समागम', 'सन्त', 'धौलगिर पर्वत', 'अवधूत', 'सुमेरु पर्वत', 'वेदान्त', 'रमता राम', 'मनमगन' 'उपनिषद्', 'सन्त संगत', 'सन्त संजोग', 'सन्त अमृतवाणी' आदि मासिक पत्र चालू किये, जिनके द्वारा सन्तों की शिक्षा का खूब प्रचार हुआ। आपने अपने जीवन में तीन हज़ार से भी अधिक पुस्तकें लिखीं, जिनमें अध्यात्म की प्रत्येक श्रेणी पर प्रकाश डाला। यदि यह कहा जाये कि आपने

सन्तमत की फ़िलास्फी की पूर्ति कर दी तो अनुचित न होगा। आपकी पुस्तकें इतनी रोचक और सदाचार व आत्मिक ज्ञान से परिपूर्ण होते हुए भी मनोरंजक भी हैं। आपने 'शाही' और 'मोती' सिलसिले के अनेकों शिक्षाप्रद आकर्षक और रोचक नाविल लिखे, जो बड़ें प्रेम तथा शौक से पढ़े जाते हैं।

आपकी लिखावट इतनी सुन्दर थी मानो कि अक्षर साँचे में ढले हुए हैं। आपके साहित्य की माँग इतनी बढ़ी कि 1914 में आपकी किताबों से आमदनी सैकड़ों नहीं हज़ारों रुपयों तक पहुँच गई।

रहनी :

कोई दु:खिया जब आपके पास आता, तो उसे बहुत शान्ति मिलती थी। आपकी वाणी में मधुरता थी। आप प्रेम की मूर्ति, दया का स्वरूप, प्रसन्नचित्त, नि:स्वार्थ और सर्व-प्रिय थे। आप एक जगह लिखते हैं :—

रहता हूँ फर्श पर, खाकी बना हुआ हूँ।
लेकिन है अर्श रहने का, खुश मुकाम मेरा॥
राहत सकून दिल की, बरकत से बहरवर हूँ।
मुझ से मिले जो दिल से, पाये इनाम मेरा॥

सादा वस्त्र, सादा और सूक्ष्म भोजन, सादा निवास-स्थान तथा सब कुछ ही सादा था। सादापन आपके जीवन की विशेषता थी।

आपके कहे हुए कुछ नुक्ते :

1) राज़ी व रज़ा रहकर जीवन बिताओ।
2) शिष्टाचार तथा अनुशासन में रहो।
3) मैं अपने लेखों में दूसरों के कथनों का उल्लेख

नहीं करता सिवाय सन्त कबीर के, क्योंकि वह परमसन्त थे।

4) जब मनुष्य दुःख सहन करते-२ निराश हो जाता है, तब मालिक की दया की धार जोश में आती है और उसके दुःख दूर कर देती है।

5) जो बात होने वाली है, वह होकर ही रहेगी, इस-लिये चिन्ता करना व्यर्थ है।

6) गृहस्थियों को अपनी आमदनी से कुछ न कुछ बचाकर रखना चाहिए ताकि वह धनराशि आवश्यकता पड़ने पर काम आ सके।

7) रुपया पैसा हाथ का मैल है, इसे दिल न दो।

8) जादू टोना दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले पर प्रभाव नहीं करता।

9) धाम निर्धन है और निर्धनता इसका गौरव है।

10) किसी वस्तु को सुन्दर बनाने के लिए मन की आवश्यकता है।

राधास्वामी धाम की स्थापना :

आपने लाहौर को छोड़ दिया और अपनी जन्मभूमि पुरा कानूनगोदान आ गये। यहाँ बस्ती से दूर एकान्त जंगल में जमीन खरीद कर 1921 में राधास्वामी धाम की नींव डाली। यहाँ प्रकाशन का काम शुरू किया। सत्संग भवन, धर्मशाला, भोजनालय के अतिरिक्त कालेज की इमारत भी बनवाई। आपके कहने पर वहाँ डाकखाना भी खुल गया। इन कार्यों में हैदराबाद दक्षिण के डा० गनेश प्रसाद जी ने विशेष भाग लिया तथा हैदराबाद के कई अन्य लोगों ने भी सहायता की।

सत्संग कार्य :

आप समस्त भारत में, दक्षिण भारत से लेकर कश्मीर तक तथा उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, बम्बई, कर्नाटक, गुजरात आदि अनेक स्थानों में सत्संग का कार्य करते रहे। आपके सत्संगों से लाखों की संख्या में लोग लाभान्वित हुए तथा बहुत बड़ी संख्या में लोग आपके शिष्य हो गये।

जब आप राधास्वामी धाम में रहते, तो वहाँ पुस्तकें लिखने के अलावा दोनों समय सत्संग कराते। आपने इसी तरह जीवनभर कठिन परिश्रम किया।

जीवनलीला समाप्त :

आपने 23 फरवरी 1939 में 79 वर्ष की आयु में राधास्वामी धाम में चोला छोड़ दिया। वहीं पर ही आपकी समाधि बनी हुई है। वहाँ पहिले दिसम्बर में भण्डारा होता था और अब शिवरात्रि पर उनका जन्म-दिवस तथा निर्वाण दिवस मनाया जाता है।

साधो गुरु का रूप लखाऊं

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

का

8 अप्रैल 1979 को मानवता मन्दिर होशियारपुर में दिया गया

सत्संग

साधो गुरु का रूप लखाऊँ।
जो कोई आवे मेरी सभा में, गुरु का रूप लखाऊँ।
सत रज तम की हद से बाहर, गुरु मूरति दरसाऊँ॥
निर्गुन सगुन देह नहीं जाके, अद्भुत भेद जताऊँ।
हाड़ मांस नाड़ी नहीं जाके, वाका रूप न नाऊँ॥
सबका सबमें सबसे न्यारा, मरम विचित्र जताऊँ।
रूप अरूप स्वरूप अनूपा, निराकार ठहराऊँ॥
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, पल-२ गुरु गुन गाऊँ।

राधास्वामी !

यह शब्द दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज का है। अपने से प्रश्न करता हूँ, "ऐ फकीर ! क्या तुमने गुरु के रूप को लख लिया है ? अगर लख लिया है तो तुम्हें क्या मिला है ?

हिन्दु होने के नाते मैं ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म, पारब्रह्म सबको मानता था और मत्था टेकता था। जब सन्तमत में शुरू-२ में आया, तो देखा कि सन्तमत सब मतों तथा धर्मों का खण्डन करता है और कहता है कि यह ईश्वर परमेश्वर,

देवी-देवता कुछ भी नहीं, बस जो कुछ है गुरु ही है। मैं अपने आप से पूछता हूँ, "फकीर चन्द ! क्या तू इस बात को दिल से मानता है या सन्तमत में शामिल हो जाने के कारण, अपनी लाज बचाने के लिए, या लोगों को दिखाने के लिए ही ऐसा मानता है ? यदि दिल से मानता है तो ठीक है, यदि केवल लोक-लाज के लिए मानता है, तो तू दोषी है।" लोग लोक-लाज के कारण असलियत को जानते हुए भी नहीं बताते। उदाहरण के तौर पर यदि आप हिन्दु या सिक्ख हैं और यह जानते हैं कि रीति-रिवाज सब आडम्बर हैं, असलियत नहीं, फिर भी आप उन रीति-रिवाजों को इसलिये मानते हैं कि आपको डर है कि यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो लोग क्या कहेंगे। इसलिये अधिकतर लोग लोक-लाज के पीछे रीति-रिवाजों को नहीं छोड़ते। इसी प्रकार जब हम किसी एक गुरु के चेले बन जाते हैं, हमारे मन में कितने भी भ्रम क्यों न हों, हम गुरु से भ्रमों को दूर नहीं करायेंगे, लोक-लाज के पीछे बस चेले बने रहेंगे। खोज नहीं करेंगे।

मेरा सारा जीवन खोज में ही बीता है। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि गुरु का दर्जा क्यों ऊँचा है ? एक दर्जा तो बाहर के गुरु का है, वह क्या करता है ? मैं औरों की बात तो जानता नहीं, अपनी बात ज़रूर बता सकता हूँ कि मेरे गुरु ने मेरे साथ क्या किया।

हम जब छोटे से बच्चे थे, तो क्या हमें राम या गुरु की तलाश थी ? नहीं थी न ! क्यों ? क्योंकि छोटा बच्चा न तो राम को जानता है, न खुदा को। अरे भाई ! उस बेचारे को तो यह भी पता नहीं कि वह है कौन और उसे किस चीज़ की तलाश है। उसका पेट भूखा है, उसका शरीर भोजन माँगता है, इसलिये उसे गुड़सत दी जाती है। ज्यों-२

वह बड़ा होता है, उसमें बुद्धि आनी शुरू हो जाती है। मैं कई बार सोचता हूँ कि बच्चों में बड़ों जैसी बुद्धि क्यों नहीं होती। इसका मुझे उत्तर नहीं मिलता, सिवाय इसके कि हमारे मस्तिष्क में विशेष प्रकार की कोठरियाँ (cells) होती हैं। इन कोठरियों में खून का दौरा जितना अधिक होगा, उनमें उतने ही अधिक गुण प्रकट हो जायेंगे और प्रकृति के नियम के अनुसार हमारे अन्दर विशेष प्रकार की बुद्धि, समझ तथा ज्ञान पैदा होता जायेगा। हरएक आदमी की प्रकृति अलग-२ होती है। जिस प्रकार के वातावरण में बच्चा पलता रहता है, जिस प्रकार के उसे संस्कार मिलते हैं वैसी ही उसकी बुद्धि विकसित होती है। बुद्धि आ जाने पर वह बच्चा बड़ा होकर सोचता है कि आखिर इस दुनिया को बनाने वाला मालिक कौन है। जिसमें बुद्धि ही नहीं वह क्या तो प्रश्न करेगा और क्या मानेगा? न वह राम को मानेगा न कृष्ण को और न किसी और को।

तो यह सिद्ध हुआ कि जिसमें बुद्धि नहीं है, वह राम को भी नहीं पूज सकता! बुद्धि को जगाने के लिए जीवित गुरु की ज़रूरत रहती है, इसलिये ही सन्तों ने गुरु के दर्जे को बहुत ऊँचा माना है। गुरु नाम किसका है? फकीर चन्द, महर्षि जी या किसी और का? सांसारिक दृष्टि से हम बाहरी गुरु को गुरु मानते हैं, क्योंकि बाहरी गुरु हमें सच्ची बुद्धि, सच्चा ज्ञान और असलियत बताकर हमें शान्ति तथा सुख प्रदान करने में सहायता देता है। परन्तु असली गुरु तो सद्बुद्धि, ज्ञान और परम शान्ति है।

अब मैं अपने से प्रश्न करता हूँ, "फकीर चन्द। तू दूसरों को तो शान्ति का रास्ता बता रहा है, क्या तुझे स्वयं को भी शान्ति मिली? हाँ! मुझे बुद्धि से सुख मिल गया। मेरी बुद्धि, जो किसी चीज़ की तलाश में भटकती रहती

थी, वह समाप्त हो गई। गुरुमत क्या है? गुरुमत ज्ञान, समझ और विवेक है। मैं पहिले विवेकी नहीं था प्रेमी था। मैं जितना दाता दयाल जी महाराज को प्यार करता वह उतना ही फटकारते थे और कहते थे :—

कर सत्संग विवेक के साथ, तेरे सीस रहे गुरु का हाथ।

जो आदमी सत्संग समझ के साथ ग्रहण नहीं करता, उस पर गुरु की कृपा नहीं होगी। मगर यह समझ सबके भाग्य में क्यों नहीं आती? इसको जानने में मैं फेल हो गया। हरएक बात हालात और वाक्यात के अनुसार कही जाती है, इसलिये केवल किताबी ज्ञान से कुछ लाभ नहीं होगा। स्वयं का अनुभव बहुत लाभदायक होता है। अपने आपको पहिचानो। गुरु के वचनों को अच्छी तरह से सुनो और फिर उनको अपने अनुभव के साथ मिलाओ, अगर तुम्हें ठीक लगे, तो उस पर अमल करो, तुम ज़रूर सफल हो जाओगे। जो स्वयं अनुभव नहीं करता, वह अन्तिम अवस्था पर नहीं पहुँच सकता। इस शब्द में दाता दयाल जी कहते हैं कि संसार गुरुमत में आकर भूल गया और गुरु की देह को ही गुरु मान लिया, फकीर चन्द को गुरु मान लिया या किसी और को।

इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में तो शिष्य को बाहरी गुरु को मानना पड़ेगा, क्योंकि उसमें इतनी बुद्धि नहीं है। उदाहरण के तौर पर, जब बच्चे को कुछ हो जाय, तो वह फौरन दौड़ कर माँ के पास जाता है। माँ बच्चे को उस मुसीबत से बचा सके या न बचा सके यह और बात है। परन्तु बच्चा तो दौड़ कर माँ के पास ही जायेगा। क्यों? क्योंकि बच्चे में अपनी बुद्धि तो होती नहीं, वह माँ को ही सब कुछ समझता है। इसी प्रकार जिन शिष्यों की बुद्धि

अभी परिपक्व नहीं है, उन्हें बच्चे की भाँति दौड़कर गुरु की शरण में जाना पड़ता है। इसी प्रकार जो राम की शरण में जाते हैं या कृष्ण की शरण में जाते हैं तो उनको सहारा तो अवश्य मिलता है, परन्तु वे भी सुख-दुःख से नहीं बच सकते। इसी प्रकार, शास्त्र, ग्रन्थ साहिब या रामायण पढ़ने से भी स्थायी शान्ति नहीं मिलती। मैं यह नहीं कहता कि इनके पढ़ने से कोई लाभ नहीं होता। एक लाभ तो यह है कि पढ़ने से मन लग जाता है, दूसरा यह कि अध्ययन से आदमी कुछ न कुछ तो सीखता ही है। मगर ऐसा व्यक्ति भी दुनिया, जो कि सुख-दुःख की खान है उससे छूट नहीं सकता।

दाता दयाल जी महाराज ने एक शब्द में लिखा है और सन्त भी यही कहते हैं कि सुरत-शब्द दुःखों को काट देता है। सुरत-शब्द ही नामदान है। सुरत-शब्द कर्मों को काटता है मगर किसके कर्मों को? जो गुरु-परायण होते हैं और जिनका सम्पर्क पूर्ण पुरुष से होता है। पूर्ण पुरुष का यह भाव नहीं कि फकीर चन्द या महर्षि जी, बल्कि सच्चा ज्ञान और सच्चा विवेक है। उस समझ को देने के लिए दाता दयाल जी ने यह शब्द लिखा है :—

साधो गुरु का रूप लखाऊँ।
जो कोई आवे मेरी सभा में, गुरु का रूप लखाऊँ।

गुरु की दया से जिस किसी का भी रूप तुम अपने अन्तर में देखते हो, वह गुरु का असली रूप नहीं, माया है। वह तो तुम्हारे अपने ही मन का विश्वास है, जैसा कि तुमने माना हुआ है। जिस प्रकार एक स्त्री है। लड़के ने उसे माँ माना हुआ है, भाई ने बहिन। उन्हें अपने ही मानने के अनुसार अपने ही विचार से लाभ पहुँचता है या हानि। दाता फ़रमाते हैं :—

सत् रज तम की हद से बाहर, गुरु मूरति दरसाऊँ।

गुरु क्या है? जो विचार हमारे मन के अन्दर उठते हैं, उनको ऋषियों ने तीन हिस्सों में बाँट रखा है। जो नेक परोपकारी सच बोलने वाला भला मानुष है, उसके अन्तर जो विचार उठते हैं उनका नाम सतोगुण है। जो लड़ाई, झगड़े, शत्रुता और चंचलता के विचार होते हैं, उनका नाम रजोगुण है और जिनकी बुद्धियाँ तेज़ नहीं हैं, खाना, पीना, सोना ही जिनका काम है ऐसे व्यक्तियों को तमोगुणी कहते हैं। जब दाता फ़रमाते हैं कि तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण से परे गुरु का रूप लखाऊँ, तो इससे उनका अभिप्राय क्या है? मन के संकल्प को छोड़कर, अपने आपको मन से ऊपर ले जाना ही सत्, रज, तम से बाहर होना है। कौन गुरु के रूप को देख सकता है? जो अपने मन के विचारों को छोड़ सकता है।

निर्गुन सगुन देह नहीं जाके, अद्भुत भेद बताऊँ।

गुरु का असली रूप न सगुण है, न निर्गुण और न ही गुरु देहधारी है। वह तो अद्भुत है। स्वामी जी कहते हैं :-

गुरु ने दीना भेद अगम का, सुरत चली तज भेद भरम का।
भटकन छूटा दहरो हरम का, संशे भागा जन्म मरन का॥

गुरु क्या करता है? गुरु भेद बताता है। मगर यह भेद जल्दी नहीं मिलता। इसमें समय लगता है। जैसे यदि तुम्हारा बच्चा दूसरी कक्षा में पढ़ता है, अगर तुम उसे पाँचवीं कक्षा का भेद बताओ, तो क्या वह समझ सकेगा? नहीं न! गुरु के रूप को केवल वही पहिचान सकता है, जिसको किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग मिला हो और जिसको सांसारिक इच्छाएँ न हों। जो गुरु से या मालिक से संसार की चीज़ें माँगते हैं, वे भिखारी हैं। जिस प्रकार हम लोग

भिखारी का मान नहीं करते, इसी प्रकार प्रकृति भी भिखारी का मान नहीं करती। यदि तुम्हें मालिक से कुछ माँगना ही है, तो उससे उसे यानि कि मालिक से मालिक को ही माँगो। गुरु का रूप सत्, रज, तम से बाहर है। दाता दयाल जी एक नई रहस्य की बात बताते हैं। वह कहते हैं :—

हाड़ मांस नाड़ी नहीं जाके, बाके रूप न नाऊँ।

गुरु के कोई नाम नहीं हैं और न ही उसके कोई हड्डी, मांस हैं। हम लोग जो गुरु बने हुए हैं, हमारी तो हड्डी, मांस है, परन्तु गुरु के नहीं। असली गुरु तुम्हारे अन्तर तुम्हारी अपनी ही ज़ात और अपना ज्ञान है। उसे तुम कब अनुभव कर सकते हो ? जब मन को छोड़ जाओगे। जब तक संसार की कोई इच्छा आपके अन्दर है, तब तक मन को छोड़ जाना असम्भव है। एक प्राकृतिक इच्छा या आशा होती है जैसा कि रोटी खाने की, पानी पीने की तथा टट्टी, पेशाब करने की। इसको तो रोका नहीं जा सकता। जो इससे अधिक आशा करता है, वह व्यक्ति जब भी अभ्यास में बैठेगा उसका मन फुरेगा ही।

यदि असली गुरु न निर्गुण है, न सगुण तो वह है क्या ? वह ज़ात है, जहाँ न तुम्हें अपने शरीर की होश होती है, न मन में विचार उठते हैं। मुझे दाता ने कहा था, "ले जा सबको गुरु के देश।" मैं अपने आप से पूछता हूँ, "फकीर क्या तुमने खुद गुरु के देश को देखा है ?" हाँ देखा है। "कैसे देखा ?" दाता दयाल जी महाराज और तुम लोगों की दया से। इसीलिये ही तो मैं आप सत्संगियों को सच्चे दिल से नमस्कार करता हूँ। जो मुझसे आपकी सेवा हो सकती है, वह करता हूँ। मैं न गुरु हूँ न महात्मा। हाँ मैंने गुरुमत को ज़रूर समझा है।

सबका सब में सबसे न्यारा, मरम विचित्र जताऊँ।

तुम नहीं समझोगे कि गुरु सबका तथा सबसे न्यारा कैसे हुआ ? जिस आदमी को यह ज्ञान हो गया कि मन कल्पना है, वह इस मन से निकल सकता है। जब वह मन को छोड़कर ऊपर जायेगा, तभी वह गुरु का रूप देखेगा। परन्तु गुरु भी तो शरीर में आता है। आता है कि नहीं ! कौन है जो शरीर में नहीं आता। सभी साधु, सन्त तथा अवतार शरीर में आते हैं। फ़रक केवल इतना है कि सभी शरीरधारी दुनिया में आकर उसमें फँस जाते हैं सन्त, महात्मा तथा अवतार फँसते नहीं। वे संसार में रहकर संसारियों की तरह काम करते हुए भी, उसमें फँसते नहीं। यही सन्तमत का भेद है, यही भेद हिन्दु धर्म, सूफ़ी धर्म और सभी धर्मों का है। यदि इतनी सी बात समझ में आ जाय, तो जीवन बन जायेगा नहीं तो जीवन भर भटकते रहो कुछ हाथ में नहीं आयेगा।

मेरी तो किस्मत ही इतनी अच्छी थी कि मुझे दाता मिल गये। मैं बहुत अभ्यास करता था और दाता को लिखा करता था, "मुझमें यह कमी है, मुझमें वह कमी है।" वह उत्तर देते थे, "तुम्हारे अन्दर संसार की वासनाएँ मौजूद हैं। जिसने तुम्हें फकीर बनाया है, वह तुम्हें पूरा फकीर बनाकर छोड़ेगा।" उन्होंने मुझे लिखा :—

तू फकीर बन, तू फकीर बन प्यारे।

उन्होंने मुझे सचमुच ही फकीर बना दिया। जब तक शरीर है मन भी रहेगा, शरीर भी। इसमें न फँसना, इसके रूप को जान लेना और अपने आपको इससे अलग समझना, यह एक भेद है। यही दाता फ़रमाते हैं :—

सब का सबमें, सबसे न्यारा, मरम विचित्र बताऊँ।

तुम्हारे अन्तर कोई ऐसी चीज़ है, जो बाबा फकीर को बनाती है, जो मन में आती है। वह सब का है, मन, बुद्धि,

चित सबमें है, और उससे अलग और न्यारा भी है। दाता कहते हैं :—

रूप अरूप स्वरूप अनूपा निराकार ठहराऊँ।

गुरु का न कोई रंग है, न रूप, वह निराकार है। असली मालिक यहाँ नहीं रहता। जैसे सूर्य की किरणें पृथ्वी पर आती हैं, मगर सूर्य स्वयं नहीं आता। यदि सूर्य पृथ्वी पर उतर आये, तो सारी पृथ्वी जलकर भस्म हो जायेगी। इसी प्रकार यदि असली मालिक पृथ्वी पर उतर आये, तो मैं, तू और सारा संसार समाप्त हो जायेगा। यदि आप सचमुच उस मालिक से प्रेम करना चाहते हैं, उसकी सेवा करना चाहते हैं, तो मनुष्य की सेवा करो। आप सारे संसार के मनुष्यों की सेवा तो कर नहीं सकते। इसलिये जिनको प्रकृति ने आपके साथ लगा दिया है, जैसे तुम्हारी स्त्री, तुम्हारी बहन, तुम्हारे माँ-बाप तुम्हारे बच्चे, पहिले स्वार्थरहित होकर इनकी सेवा करो। सन्तान को सन्तान के लिए पैदा करो। बिना इच्छा जो सन्तान होती है, वह कभी आपका कल्याण नहीं कर सकती। मेरे भी बिना इच्छा के कई सन्तानें हुई थीं। मगर मालिक ने मुझ पर बड़ी दया की कि वे मर गईं। जो लड़का मैंने अपनी इच्छा से किया था, वह बहुत ही लायक है। आप गृहस्थियों को चाहिए कि यदि अपने बूढ़े माँ-बाप की सेवा करें महिलाएँ पति तथा सास-ससुर की सेवा करें, भाई-भाई की सेवा करें, तो दुनिया के कष्ट दूर हो जायेंगे।

राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, पल-२ गुरु गुण गाऊँ।

मैं महर्षि जी या आगरे के राधास्वामी दयाल के गुण नहीं गाता, मैं तो परमतत्त्व आधार की शरणागत रहता हूँ। बुढ़ापे में मैं शरणागत रहता हूँ। क्योंकि आप लोग आ जाते हैं, इसलिये आपको कुछ कह देता हूँ, वरना अब मेरा कुछ

भी कहने को मन नहीं करता। अब मेरा धर्म केवल शरणागत है। कभी-२ महीने-दो महीने के बाद, जब प्रकाश और शब्द को भी छोड़ देने का समय मिलता है, तब न मैं, न तू, न गुरु और न कोई और रहता है।

हममें मैं आई हुई है, जो हमें दौड़ाती रहती है। शरीर की "मैं", मन की "मैं", आत्मा की "मैं" और सुरत की "मैं"। मेरी सुरत की "मैं" तो अभी गई नहीं परन्तु दाता तथा आपकी दया से बाकी "मैं" से मैं बच गया हूँ।

मैं तो शरणागत हो गया, परन्तु आप नहीं हो सकते, जब तक कि आप स्वयं अनुभव से न गुज़रो। इसलिये अपने अन्तर में जा कर अनुभव करो। संसार का मोह धीरे२ छोड़ते जाओ। यदि तुम दूसरों को उपदेश देना चाहते हो, तो पहिले स्वयं आमल बनो। यदि तुम खुद आमल नहीं, तो उपदेश देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, तुम धोखेबाज़ हो।

याद रखो, जो नाम तुम्हें गुरु ने दिया है, वह नाम क्या है और किस हकीकत और असलियत को प्रकट करता है, इसको समझकर जब तुम नाम लोगे, तब तुम्हें लाभ होगा। अगर तुम्हें नाम के असली मतलब का पता नहीं, तो तुम बेशक लाख नाम जपते रहो, तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। जैसे नींबू कहने पर, उसके विचार से ही तुम्हारे मुँह में पानी आ जायेगा, क्योंकि तुम नींबू का मतलब समझते हो। परन्तु यदि तुम किसी अंग्रेज़ को नींबू कहो, तो उसके मुँह में पानी नहीं आयेगा। क्यों? क्योंकि वह नींबू का मतलब नहीं समझता। इसलिये कहावत है :—

मेल मिले का मेला, गुरु मिले का चेला।

मुझे क्या मिला? शान्ति मिल गई। जिस खुदा को ढूँढ़ता फिरता था, पता लग गया कि वह क्या है।

सबको राधास्वामी!

आये गुरु महाराज री अपनी दासी के घर

सत्संग परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर, दिनांक 3-7-88

आये गुरु महाराज री, अपनी दासी घर ।।
लाई प्रेम की थाली दासी, मंगल आरत साज री,
लख गुरु प्रीतम वर ।।
प्रीति प्रतीति के भूषन बस्तर, आये सन्त समाज री,
मन धन न्यौछावर ।।
चरन कमल लग उमंग बढ़ाया, मनमानो कियो काज री,
माँगा भक्ति वर ।।
शबरी के बेर राम बन खाये, रख ली दया से लाज री,
करुणा के सागर ।।
राधास्वामी दीन दयाला, हुए प्रसन्नचित्त आज री,
दासी के ऊपर ।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सद्गुरुरूप सत्संगी भाइयो और बहनो ।

मैं करीब ढाई महीने के बाद बाहर से कल ही वापिस आया हूँ । परम दयाल जी महाराज ने शर्त लगा दी थी कि तुम सत्संग अवश्य देना और सत्संग में अपने अनुभव को

बाँटना। सत्संग क्या है? सत्संग निर्मल गंगा है। सत्संग वह समुद्र है, जिसमें प्रेम की तरंगें लहराती हैं। प्रश्न उठता है कि यह जगत् क्यों पैदा हुआ? मालिक ने इतना बड़ा संसार क्यों पैदा किया और हम जीवों को अपने से अलग क्यों किया? क्या हम स्वयं अपनी इच्छा से, अपनी संकल्प की शक्ति से, किसी जिज्ञासा को लेकर, किसी वासना को लेकर इस जगत् में आये? परम दयाल जी महाराज अपने सत्संगों में कहते थे कि यह जगत् वाससा का है। इसलिये मैं तुम्हें Line of action दे रहा हूँ। तुम्हें क्या सिखा रहा हूँ? गुरु क्या है? गुरु नाम ज्ञान का है, विवेक का है और समझ का है। गुरु आपको समझाता है कि कौन सी चीज आपको स्थायी सुख देने वाली है और कौन सी अस्थायी सुख देने वाली है। विवेक बिना गुरु के ज्ञान के नहीं होता। इसीलिये मालिक को इस जगत् में सन्त के रूप में आना पड़ता है। वह ज्ञान शरीर की रग-रग के अन्दर, हर साँस के अन्दर रच जाने वाला है। राधास्वामी हालत में रहने का ज्ञान, उस व्यक्ति को मिलता है, जिसके अन्दर तड़प है, प्यास है। यह तड़प हर व्यक्ति के अन्दर है, लेकिन हर व्यक्ति उस तड़प को पहिचान नहीं पाता है। हर व्यक्ति ढूँढ़ तो उसी (मालिक) को रहा है, जब तक इस तथ्य को वह समझ नहीं लेता, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती।

इस जगत् के अन्दर जितने भी धर्म हैं इस बात का दावा करते हैं कि हम आपको उस जगह पर ले जायेंगे जहाँ से आप आये हैं। कोई उस जगह को स्वर्ग कहता है, कोई शिवलोक कहता है, कोई उसे ब्रह्मलोक कहता है। ये सब ख्यालात हैं, जो सीमित हैं। यह सत्य है कि ये सब लोक हैं। गोलोक में भगवान् कृष्ण सखियों के साथ नृत्य कर रहे हैं। शिवलोक में शिव जी तांडव नृत्य कर रहे हैं।

विष्णुलोक में विष्णु भगवान् अपनी शेषनाग की शैय्या पर लेटे हैं। ईसाई कहते हैं कि वहाँ पर जीज़स क्राइस्ट बैठा है। तो यह सारे सिद्धान्त हैं। जिसने जहाँ तक अनुभव किया, उस अनुभव को एक सिद्धान्त बना दिया। अब ईसाई कहते हैं कि अगर तुसने जीज़स क्राइस्ट को नहीं माना, तो तुम नरक में जाओगे। मुसलमान कहते हैं कि खुदा एक है। कोई दूसरे देवता नहीं हैं। खुदा को मिलाने वाला गुरु हज़रत मोहम्मद है। केवल उसे मानो। अब इन सबकी बातों को सुनकर आदमी कहाँ जाये? परम दयाल जी महाराज ने यही सवाल मुझसे किया था। मैंने कहा :—

सर्ववेदान्तसिद्धान्त-गोचरम्।

हम उसे नमस्कार करें, जो सद्गुरुरूप है। उस मालिक को सभी ढूँढ़ रहे हैं। जो जहाँ तक पहुँचा अर्थात् जिसने जहाँ तक अनुभव किया, बस उसे ही आखिरी मंज़िल मान लिया। परम दयाल जी महाराज ने एक प्राइवेट सत्संग में मेरे से कहा "शर्मा! जब मैं इस मत में आया और मैंने सार-वचन पढ़ा तो मैं घबरा गया। उसमें लिखा था कि पाराशर नहीं पहुँचा, छः शास्त्र भी ग़लत हैं। ये सब अधूरे हैं। मैं ब्राह्मण था। भला कौन ब्राह्मण इस बात को सुन सकता है?, मैंने कहा, "महाराज जी! मैं ब्राह्मण हूँ। मैं इस बात को सुन सकता हूँ?" स्वामी जी महाराज ने खण्डन नहीं किया न ही वह शास्त्रों के खिलाफ हैं। उनकी बात सही है। सबने अपने-२ तरीके से, अपनी-अपनी पहुँच के मुताबिक उस मालिक को पाया। जो जहाँ तक पहुँचा, बस वहीं अटक गया। यह जो छः शास्त्र हैं, असल में यह छः दृष्टियाँ हैं। यह छः शास्त्र अपने-२ तरीके से मालिक का रूप समझा रहे हैं। इन शास्त्रकारों ने जैसा समझा वैसा लिख दिया और कहा कि यदि उसके तरीके को

अपनाओगे, तो उस मालिक को वैसा ही पाओगे जैसा उसने पाया है। गुरु नानक ने भी कहा तुम उस मालिक के बारे में सोचते चले जाओ। जहाँ तुम्हारी सोच समाप्त हो जाये, वहाँ तुम उस मालिक को पाओगे।

"सोचे सोच न होई जे सोचे लखबार।"

तो स्वामी जी महाराज ने या राधास्वामी मत ने खण्डन नहीं किया। जो जहाँ पहुँचा, बस वहीं बैठ गया। उससे आगे नहीं गया। राधास्वामी मत में शिवनेत्र अर्थात् आज्ञाचक्र से चलते हैं। शिवनेत्र से आगे सहस्र-दल कमल है। सहस्र-दल कमल क्या है? हज़ारों पँखड़ियों वाला कमल का फूल है, जिसका अर्थ है कि हज़ारों-करोड़ों शक्तियाँ, देवी-देवता सब विराट् के अन्दर मौजूद हैं। अक्सर धर्म विराट् तक ही पहुँचे हैं और उन्होंने कहा कि बस यही खुदा है। ब्रह्मा ही खुदा है। लेकिन विष्णु की मूर्ति तो बताती है कि ब्रह्मा विष्णु की नाभि से निकले हैं। अब जो विष्णु को मानता है, वह ब्रह्मा से आगे है। अक्सर पश्चिमी धर्म ब्रह्मा अर्थात् विधाता तक ही पहुँचे हैं। विधाता इस जगत् का मालिक है। उसने नियम बनाया है—जन्मकर्म का फल। लेकिन जो ब्रह्मा तक सीमित है, वह 'जन्मकर्म का फल' के अन्दर ही रहेगा। मीमान्सा वाले कर्मकाण्ड कराते हैं। कर्मकाण्ड से सनातन धर्म चलता है। जन्म के समय कर्मकाण्ड होता है, मृत्यु पर कर्मकाण्ड होता है। इस कर्म-काण्ड से क्या होगा? इस कर्मकाण्ड से आपको अगला जन्म अच्छा मिल जायेगा। लेकिन यह तो चक्कर में फँसना हुआ। इसलिये कबीर साहिब ने कहा :—

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर कहिये इन सिर लागी काई।
इनके भरोसे मत कोई रहियो इनहूँ मुक्ति न पाई॥

यदि तुम ब्रह्मा के जगत् में बिचरते रहोगे, कर्मकाण्ड करते रहोगे, दान-पुण्य करते रहोगे, तो फिर तुम्हें अच्छा जन्म मिल जायेगा। लेकिन तुम्हें तो इससे आगे जाना है। सद्गुरु आपको बतायेगा कि कर्मकाण्ड करते हुए, आप आगे कैसे जा सकते हैं? परम दयाल जी महाराज कहते थे कि जब तुम समाधि में बैठो, तो किसी वासना या इच्छा से बैठो। यह जगत् वासना का है। यदि मालिक से मिलने की इच्छा हो, तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन इससे भी आगे जाओगे। इससे आगे तब जाओगे, जब शिवसंकल्प रखोगे। अब ब्रह्मा के भक्त ब्रह्मा तक पहुँचे। विष्णु-भक्त विष्णु तक पहुँचे, और शिवभक्त, शिवलोक तक पहुँचे। लेकिन ये तीनों त्रिकुटी में बैठे हैं। ये तीनों जहाँ से आये हैं, उसे सुन्न कहते हैं। सुन्न में दो होते हैं 1) प्रकृति, 2) पुरुष। अब प्रकृति, पुरुष कहाँ से आये? प्रकृति और पुरुष महासुन्न से आये। महासुन्न में सत् सत् की ध्वनि है। यह सत् सत् सोहम् से आया। इस प्रकार सन्त इन सब दर्ज़ों से गुज़रता हुआ सोहम् तक पहुँचता है। सोहम् का अर्थ है 'मैं वो हूँ'। यहाँ पर वो और मैं पुरुष और प्रकृति दोनों मौजूद हैं, कभी तो सुरत ऊपर मालिक की तरफ जाती है और कभी नीचे की ओर आती है। इसलिये इस अवस्था को भँवरगुफा कहा गया है किन्तु गुरु के मार्गदर्शन से और नाम के सुमिरन से सुरत सतलोक में पहुँच जाती है जहाँ पर शब्द और प्रकाश है। वहाँ पर साधक एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है जहाँ पर उसे किसी प्रकार का सुख-दुःख, लाभ-हानि नहीं होता। यहाँ तक सन्त पहुँचते हैं। इससे आगे जाते हैं परमसन्त उनका लक्ष्य सत्पुरुष और सतलोक से भी आगे है। यहाँ मैंने देखा कि ज्यादातर नाम-दान देने वाले नामदान देते समय कहते हैं कि हम तुम्हें

सतलोक पहुँचा देंगे, चाहे वह स्वयं सतलोक तक पहुँचें या न पहुँचें। वहाँ से भी आगे 'सर्ववेदान्तसिद्धान्त-गोचरम्' जितने रास्ते लोक-लोकान्तरों तक पहुँचे हैं, वो गोचर हैं। वह उस सत्पुरुष की तलाश कर रहे हैं जिसको सब तलाश कर रहे हैं। 'तम् अगोचरम्' लेकिन पूरी तरह से नहीं पहुँच सके। 'गोविंदं परमानन्दम्' ऐसे गोविन्द को, इस जगत् से परे चौथे पद में रहने वाले बिन्दु को और परमानंद को, जो आनन्द से परे है नमस्कार करता हूँ। यह आज के मंगलाचरण की व्याख्या है।

आम लोग इस जगत् के सुख को ढूँढ़ते हैं। अब जगत् में सुख के साथ दुःख भी होगा। इस जगत् में तो सुख-दुःख लाभ-हानि, सर्दी-गर्मी, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति का संघर्ष तो रहेगा। तो इस संघर्ष के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। यहाँ का सुख अस्थायी सुख है।

सतलोक से आगे अलख, अगम और अनामी से भी आगे की अवस्था में परमसन्त रहता है। वहाँ 'मैं' नहीं रहती। वहाँ न शरीर की "मैं" रहती है, न मन की "मैं" रहती है, न आत्मा की "मैं" रहती है, न सुरत की "मैं" रहती है। वहाँ शब्द की भी "मैं" नहीं रहती है। इस अवस्था में जो रहता है, वही कह सकता है कि सारे सिद्धान्त वहाँ तक नहीं पहुँचे। यदि वह खुद वहाँ नहीं पहुँचा, तो कैसे कहेगा कि वह वहाँ तक पहुँचा था या नहीं पहुँचा था। मैंने महाराज जी को कहा कि यह बात बिलकुल ठीक है कि जितने भी सिद्धान्त हैं, वे आधे रास्ते तक जाकर ही अपनी दृष्टि बता रहे हैं। शास्त्र भी ग़लत नहीं हैं बल्कि शास्त्रों पर चलने वाले सम्प्रदायवादी भूल कर गये, क्योंकि उन्होंने एक-दूसरे की बात को न सुना न समझा। इसलिये स्वामी जी महाराज ने कहा :—

खट शास्त्र बुद्धि चलाया,
अन्ध मिल धूल उड़ाया ।

जो शब्द महाराज जी को अखरे थे, वे शब्द मुझे नहीं अखरे क्योंकि शास्त्रों को चलानें वाले सच्चे थे। सोचते-२ एक हालत ऐसी आती है, जिसमें सोचने के लिए कुछ नहीं रह जाता। कुछ सोचा नहीं जा सकता, लेकिन अनुभव हो जाता है। कणाद ऋषि ने वैशेषिक दर्शन लिखा। उन्होंने सारे जगत् का विश्लेषण करते-२ अनुभव किया कि हर चीज़ के अन्दर अणु-२ के अन्दर उस मालिक की झलक है। उन्होंने अन्दर जाकर महसूस किया कि ज़र्रे-२ में उस मालिक की झलक है। दाता दयाल जी महाराज ने भी कहा है :—

जहाँ आँख खोली वहीं तुझको पाया।
कहीं ज्योति था तू कहीं था तू छाया ॥

यह हालत सन्त की होती है। इसलिये सन्त किसीको अच्छा-बुरा नहीं मानता। सांख्य वालों ने प्रकृति और पुरुष को माना अर्थात् ये प्रकृति पुरुष तक पहुँचे। हमारा राधा-स्वामी मत भी प्रकृति और पुरुष को मानकर चलता है। इस बात को भी कहता है कि प्रकृति से अलग हो जाना, कर्मों का क्षय कर देना, प्रकृति के पर्दों को हटा देना ही राधास्वामी हालत में पहुँचना है। यही बात सांख्य के रचयिता कपिल ऋषि ने कही है। पतञ्जलि ने योगशास्त्र लिखा। उन्होंने कहा कि उस हालत पर पहुँचने के लिए, तुम अपनी सारी चित्तवृत्तियों को समाप्त कर दो। परम दयाल जी महाराज ने मेरी एक किताब की भूमिका लिखी है, जिसमें उन्होंने पतञ्जलि का कथन भी दिया है— पतञ्जलि के अनुसार "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात्

सब चित्तवृत्तियों को समाप्त कर देने से, व्यक्ति उस हालत में पहुँच जाता है जिसमें भेदभाव सब समाप्त हो जाते हैं।

किसी स्थूल चीज़ से प्यार करना चित्तवृत्ति में फँसना है। इसीलिये परम दयाल जी महाराज कहते थे कि अगर कोई व्यक्ति गुरु के शारीरिक रूप को मानकर के समझता है कि उसको मोक्ष मिल जायेगा या वह निजधाम पर पहुँच जायेगा, तो वह ग़लत है। अक्सर लोग मोक्ष का मतलब मरना समझते हैं। लेकिन मोक्ष का मतलब है कि इसी जीवन के अन्दर पूर्णता को, पूरी आजादी को प्राप्त करना। किसी चीज़ का बन्धन नहीं हो। आज़ाद कौन है? आज़ाद वह व्यक्ति है, जो मालिक का स्वरूप बन जाता है। मालिक की तरह शरीर के अन्दर रहता है। इसी का नाम मोक्ष है। तो जब तक तुम स्थूल के साथ बन्धे हुए हो, पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते। इस जगत् में कोई बिरला ही आदमी होता है, जो संसार का त्याग कर देता है। पतञ्जलि ने त्याग के लिए योग बताया है, जिसमें अष्टांग योग को भी बताया, जो इस प्रकार है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

प्रत्याहार में ज्ञानेन्द्रियों को बाहर से हटाकर अन्दर ले जाना होता है। राधास्वामी मत भी इसी बात को कहता है कि तीन ज्ञानेन्द्रियों के अन्दर ले जाने से, अन्दर शब्द सुनने से, उसमें विलीन हो जाने से, दुनिया के सारे आभास, मन के सभी झगड़े समाप्त हो जाते हैं। लेकिन ये आभास कुछ देर के लिए ही समाप्त होते हैं। क्योंकि जब मनुष्य शब्द योग से नीचे उतरता है तो फिर से दुनिया के सभी आभास होने लगते हैं। परम दयाल जी महाराज कहते थे "मैंने इतना अभ्यास किया, शब्द सुने, प्रकाश देखे लेकिन इसके बाद भी क्या मुझे क्रोध नहीं आया? ये

आभास कब समाप्त हुए, जब मैंने यह अनुभव कर लिया कि जितने भी मेरे अनुभव हैं, असली नहीं हैं। असली तो वह हालत है, जहाँ पहुँच कर मुझे यह होश नहीं रहता कि "मैं हूँ" और यह भी होश नहीं होता कि "मैं नहीं हूँ"। मेरी यह हालत कब आई? जब मुझे पता चला कि तुम मेरा रूप देखते हो, पर मैं नहीं होता।" आपका गुरु के रूप को देखना बिलकुल ठीक है और आपको देखना भी चाहिए। यदि आप गुरु के रूप को नहीं देखते, तो आप अधूरे हैं। गुरु का रूप देखने का अनुभव आपको कब होगा? जब आप अपने इष्ट को पूर्ण मानकर रात-दिन उसीके ध्यान में रहेंगे। यदि आपको रूप प्रकट होने का अनुभव न भी हो, तब भी चिन्ता की बात नहीं है। लेकिन उसका रूप हमेशा आपके मन के अन्दर बसा रहे। इससे भी आपको शान्ति मिलेगी।

सन्तमत ने या गुरुमत ने पतञ्जलि के अनुभव की ओर इशारा करते हुए कहा है :—

तीन बन्ध लगायकर सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाधि में नहीं साँझ नहीं भोर॥

हम आपसे यह नहीं कहते कि आप दोनों कानों में उंगली देकर बैठ जाओ। लेकिन जब आपको सन्तमत, परा-प्रेम और पराभक्ति के रास्ते पर चला देंगे, तब आपको स्वयं ही वैराग्य आ जायेगा। यहाँ वैराग्य का मतलब है कि आप इसमें, गृहस्थ के अन्दर रहते हुए, सब वस्तुओं का भोग करते हुए, अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए, मालिक से जुड़े रहेंगे। यह सहज रास्ता है। लेकिन लोग तो कठिन रास्ते से जाना चाहते हैं। पहिले एक इष्ट बनाओ। उसको पूर्ण मानकर उसे अपनी खोपड़ी में रखो। उस इष्ट से इतना प्यार करो कि सब कुछ भूल जाओ। जब तुम स्वयं

को भी भूल जाओगे, तब तुम्हारी प्रवृत्ति दुनिया में नहीं लगेगी। तुम लालच में नहीं फँसोगे। तुम्हारे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार स्वयं ही समाप्त हो जायेंगे। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। सन्तमत या राधास्वामी मत की यह खासियत है कि इस मत के अन्दर वह अवस्था आसानी से मिल जाती है, जिसको पाने के लिए पहिले ऋषि, मुनि हज़ारों वर्षों तक कोशिश किया करते थे, अनेक रास्ते अपनाते थे, तब भी वह अगोचर को नहीं पा सके। लेकिन जो पा गया, जो शरणागत हो गया, उसे नीचे के दर्जों की कोई परवाह नहीं। यही कारण था कि स्वामी जी महाराज ने कहा कि दूसरे धर्म वाले नहीं पहुँचे। जहाँ तक पहुँचे, उसीको अपना कहने लगे। इसीलिये विष्णु पुराण में, विष्णु को ही सब कुछ समझते हैं। लेकिन जब गुरु के बताये हुए रास्ते पर चलोगे, तब उस सर्वाधार परमतत्त्व को प्राप्त कर सकोगे। यह विरोध नहीं है। यह तो जहाँ पर आप बैठे हो वहीं से आपको ऊपर उठाकर ले जाना है। यह सद्गुरु का काम है कि आप जहाँ बैठे हो, जिस वातावरण में बैठे हो, वहीं पर आपको मालिक का साक्षात्कार करा देगा, लेकिन यह तब होगा, जब तुम्हारी अवस्था शरणागत की होगी। ये शर्त है।

गोविन्दम् परमानंदम् सद्गुरुम् प्रणतोस्म्यहम।

गुरु के अन्दर जो पूर्ण है, सत् है बस उसको नमस्कार कर लिया। नमस्कार करते ही आपका काम बन जायेगा।

साधु की संगत गुरु की सेवा, सहज ही काम बनावे।

यह राज़ है। परम दयाल जी महाराज ने इस राज़ को खोला। मैं उनसे भी ज़्यादा खोलकर बता रहा हूँ कि पहिले सद्गुरु को ढूँढ़ो। जब सद्गुरु मिल जाये, तो एक पतिव्रता स्त्री की तरह से उसके साथ जुड़ जाने से

आपका काम बन जायेगा। जो एक सद्गुरु को नहीं मानता वह बड़ी भारी गलती करता है। जब एक बार स्वीकार कर लिया, तो मन कभी भी विचलित नहीं होना चाहिए। जब मन विचलित होगा, तब कोई न कोई कष्ट अवश्य आयेगा। सद्गुरु को 24 घण्टे परमतत्त्व मानना पड़ता है। मानने का मतलब है कि तुम स्वयं वैसे ही बन जाओगे।

अमेरिका में एक सज्जन हैं। परम दयाल जी महाराज 1972 में जब अमेरिका उनके यहाँ गये, तो मुझे भी अपने साथ ले गये। उस समय वह सज्जन इञ्जीनियर थे। उन्होंने महाराज जी के पहुँचने पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति दिखाई। महाराज जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद कब फलता है जब मनुष्य सचमुच प्यार करता है। वह सज्जन कैलीफोर्निया में अपना काम करने लगे। महाराज जी के आशीर्वाद से काम चल गया और वह अरबपति बन गया। करोड़ों रुपयों का उसने मकान बनवाया। महाराज जी जब भी जाते थे, बड़ी इज्ज़त करता था। परम दयाल जी महाराज के चोला छूटने के कई साल बाद, उसने मुझे अपने घर बुलाया। मैंने महसूस किया कि उसकी श्रद्धा में फरक था। उसके माँ-बाप आये थे, वह उसे मानते थे। उनके कहने से उसने मन्दिर के लिए सिर्फ एक सौ डालर दिया और महेश योगी को उसने लाखों डालर दिये। मैं यह नहीं कहता कि मुझे दो। मुझे आपके पैसे की ज़रूरत नहीं है। अब उस सज्जन को एक साथ घाटा आया हालत यहाँ तक बिगड़ गई कि शाम को खाने के लिए पैसे नहीं होते थे। वह भारत आया और मेरे से मिला कहने लगा, "मेरे से बड़ी भूल हो गई, मुझे क्षमा कर दें।" मैंने कहा, "कोई बात नहीं। चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायेगा।" बाद में मुझे पता लगा कि वह किसी ज्योषिषी के चक्कर में था। जब मैं अमेरिका गया तो वह

सज्जन और उसकी पत्नी मेरे पास आये। उसकी पत्नी ने बड़े अहंकार से कहा, "हमसे क्या भूल हो गई है?" मैंने कहा, "तुम्हारे अन्दर अहंकार बहुत है। तुमने महेश योगी के पास जाकर ग़लती की है।" वह दोनों चले गये। एक बार वह फिर मिलने आया। बड़ी नम्रता से कहा, "महाराज! मेरी यह हालत कैसे हो गई? बड़ी मुश्किल से उधार पैट्रोल लेकर मैं आपके पास आया हूँ।" मैंने कहा, "अब तुम्हारा कल्याण हो जायेगा, क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा वापिस आ गई।" मैं उनके घर गया। रहा भी। अब उसकी हालत कुछ सुधर गई है।

मैं आपको बता रहा था कि थोड़ी सी कमी आने से तुम्हारा काम नहीं बनेगा। खासकर वे लोग जो महाराज परम दयाल जी के समय से मन्दिर को आर्थिक सहायता देते आये हैं उसे बन्द करने से हानि तो होगी ही। घमण्ड तो टूटेगा ही। यह प्रकृति का नियम है। हम तो जो हैं, वो हैं। गुरु के प्रति तो तुम दृढ़ संकल्प रखो। पहिले शब्द में गुरु को क्या माना है?

आये गुरु महाराज री अपने दासी घर।

देखा जाये तो सुरत अपने गुरु को मना रही है। सुरत आपके अन्दर है और राधास्वामी को स्वामी मानकर बुला रही है।

आये गुरु महाराज री अपने दासी घर।

मैंने पहिले भी आपको बताया था कि अपनी दासी के घर नहीं, वह गुरु-गुरु नहीं जो दूसरों को दास-दासी बनाता है। दास-दासी बनाने का तो सवाल ही नहीं उठता। गुरु तो तुम्हें आज़ाद कर देता है। तुम्हें आज़ाद करने के लिए ही तो वन्धन लगाये हैं। वह बन्धन तुम्हें निर्बन्ध कर देंगे। दास-दासी तो वह बनाता है, जो दुनिया के अन्दर

फँसा हुआ है। सद्गुरु कभी किसीको अपना भोजन नहीं बनाता। वह तो आजाद कर देता है। यदि तुम उसके पास इस दृष्टि से गये हो कि वह तुम्हें अपने में विलीन कर ले, अपने जैसा बना ले, तो वह तुम्हें विलीन करके अपने जैसा ही बना देगा। इसीलिये इस शब्द में कहा है :—

आये गुरु महाराज री अपने दासी घर।

अपनी दासी के घर नहीं। अपने घर के अन्दर आये। वह घर तुम्हारा मन है और मन शिवसंकल्प है तो गुरु महाराज जायेंगे कहाँ? तुम्हारे मनरूपी घर को अपना घर मानकर आयेंगे। 'आये गुर महाराज'। कह देने से कुछ नहीं, बल्कि महाराज को मन में बिठाओ और इतना प्यार करो कि तुम शरीर, मन और आत्मा तक को भूल जाओ। तुम एक कदम चलोगे वह लाख कदम चलकर तुम्हारे पास आयेगा और तुम्हें अपने में मिला लेगा। वह तुम्हें अपने में विलीन करने के लिए ही तो आया है।

पहिले दाता शिष्य भया, तन, मन अरपा शीश।
पाछे दाता गुरु भया, नाम दिया बख्शीश॥

यह सारा जगत् उसी की सृष्टि है, उसी का अंश है, उसी ने ही अपने आपको एवं अपने अंशों को जगत् में भेजा है और वह स्वयं ही उन अंशों को वापिस निज-धाम ले जाने के लिए गुरु के रूप में प्रकट होता है। सभी जीव आरम्भ में स्थूल जगत् में मालिक का प्रेम अनुभव करने के लिए आये किन्तु वे अपने उद्देश्य को भूलकर माया-जाल में फँस गये। उन्होंने धारा में बहकर संसार में सुख अनुभव करने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें स्थायी सुख न मिल सका। इस धारा में बहते हुए जब जीवों को अपने मालिक की याद आई। इस तड़प से प्रेरित होकर जब उन्हें सच्चा सद्गुरु मिल गया, तो उन्होंने धारा से राधा बनकर

शरीर, मन और आत्मा के अनुभव से ऊपर उठकर अपने आपको पूरी तरह से सद्गुरु को अर्पित कर दिया। परम-तत्त्व स्वयं उनकी तड़प से प्रेरित होकर सद्गुरु के रूप में आया और उसने उन्हें अपने आप में मिला लिया अर्थात् उन्हें राधास्वामी अवस्था में पहुँचने का भेद बता दिया। किन्तु उसकी यह दया जीवों की कुर्बानी के कारण नहीं, बल्कि अनायास करुणा के कारण हुई। यही ऊपर दिये गये शब्द का भाव है।

सद्गुरु बिना किसी स्वार्थ के जीव को ऊपर उठाता है, क्योंकि उसे यह पूर्ण आभास है कि जीव उसीका ही अंश है। जब जीव अपनी अपूर्णता का अनुभव करके अपने आपको समर्पित करते हुए, दासभाव को प्रकट करता है और इस प्रकार उसका मन हर प्रकार के विचारों से मुक्त होकर पवित्र हो जाता है, तो सद्गुरु, उसके अन्दर प्रवेश करता है। यही वास्तव में इस शब्द की पहिली कड़ी का अर्थ है।

लाई प्रेम की थाली दासी, मंगल आरत साज री।
लख गुरु प्रीतम वर, आये गुरु महाराज री ॥

यहाँ पर दाता दयाल जी महाराज प्रेममय भक्त को उसी प्रकार उत्सुक और अपने प्रीतम की इन्तज़ार में भावुक बता रहे हैं जैसे कि एक दुल्हन 'दूल्हा की प्रतीक्षा की उत्सुकता में थाली में दीपक आदि सजाकर दूल्हा के आने पर उसकी आरती करती है। क्योंकि उसको वह अपना वर मानती है एवं स्वामी मानती है। इसी प्रकार साधक या सत्संगी अपने स्वामीरूपी वर को प्राप्त करके उसकी आरती करता है किन्तु वह आरती मानसिक होती है और वही मानसिक आरती उसके गुरुरूपी पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम की अभिव्यक्ति होती है।

प्रीति प्रतीति के भूषण वस्तर
अरपे सन्त समाज री।
मन धन न्यौछावर ॥

जिस प्रकार वर-वधू के सम्बन्धी एवं वर-वधू का समाज उपहार के रूप में दूल्हा को भूषणवस्त्र आदि का दहेज देते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक विवाह के समय वर-वधू के सम्बन्धी अर्थात् उसके भाव और विचार प्रीति और श्रद्धारूपी वस्त्र अपने दूल्हा को भेंट करते हैं। उसके भाव और विचार शुद्ध होने के कारण सन्त समाज कहे गये हैं। दुल्हन एवं साधक अपने शरीर, मन और आत्मा को भूल-कर सद्गुरु रूपी दूल्हा में विलीन हो जाता है।

चरन कमल लग उमंग बढ़ाया, मन मानो कियो काज री।
माँगा भक्ति वर, आये गुरु महाराज री ॥

जिस प्रकार दुल्हन-दूल्हा के चरण छूकर प्रेमभाव से ओत-प्रोत होकर दूल्हारूपी वर को प्राप्त कर लेती है, उसी प्रकार साधक सद्गुरु के चरणों में अत्यन्त प्रेम का अनुभव करता हुआ, सद्गुरुरूपी दूल्हा से पराभक्ति का वर प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार दुल्हन की वरप्राप्ति की इच्छा पूरी हो जाती है, उसी प्रकार साधक की भक्ति प्राप्त करने की इच्छा पूरी हो जाती है।

शबरी के बेर राम बन खाये, रख ली दया से लाज री।
करुणा के सागर, आये गुरु महाराज री ॥

जो जिस भाव से सद्गुरु को प्राप्त करना चाहता है, उसी भाव के अनुसार ही सद्गुरु उसकी इच्छा पूरी करता है। प्रेम की पराकाष्ठा के कारण सद्गुरु का वही रूप प्रकट होता है, जिससे सत्संगी की इच्छा पूरी हो सकती है। रामायण की कथा में शबरी भीलनी का ज़िक्र आता है। शबरी को यह विश्वास था कि उसका इष्ट साक्षात् मनुष्य

के रूप में उसके घर आयेगा। वह अपने घर के रास्ते को फूलों से सजाती रहती थी। उसने इस विश्वास में कि मनुष्य के रूप में भगवान् उसके घर आकर भोजन करेंगे, शबरी ने बहुत से मीठे बेर चख-२ कर भगवान् के भोजन के लिए इकट्ठे कर लिये थे। उसकी इस इच्छा को पूरा करने के लिए और उसकी भावना की लाज रखने के लिए भगवान् ने राम का रूप धारण करके उसके जूठे बेरों को खाया।

इस प्रकार के अनेक चमत्कारी उदाहरण भक्तों के जीवन में और सत्संगियों के जीवन में देखने में आते हैं। नरसी भक्त की हुण्डी तारने और उसकी बेटी के विवाह के समय सोने के आभूषण, वस्त्र और दहेज आदि उपस्थित होने के चमत्कार विश्वविदित है। हमारे सत्संगी प्रतिदिन ऐसे चमत्कारों का अनुभव करते हैं। इन घटनाओं का मुख्य कारण सच्चा प्रेम, अगाध विश्वास और श्रद्धा है, गुरु का स्थूल रूप नहीं है। जब सद्गुरु आपकी दुनियावी इच्छाओं को पूरा करके तुम्हारी सांसारिक लाज रखने का माध्यम बन जाता है, तो यदि तुम उसे परमतत्त्व मानकर उससे अगाध प्यार करोगे, तो तुम परम पद को प्राप्त कर लोगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमतत्त्व आधार, जब मनुष्य का चोला धारण करता है, तभी वह करुणा का सागर बन जाता है। करुणा एक मानवीय अनुभव है। इसलिये मानवीय चोले में ही परमतत्त्व आधार अपने भक्त के भावों से प्रभावित होकर उसकी लाज रख लेता है।

राधास्वामी दीन दयाला, हुए प्रसन्नचित्त आज री।
दासी के घर आये गुरु महाराज री॥

इस कड़ी में राधास्वामी पराभक्ति का भेद छुपा हुआ है। जब-तक मनुष्य अपने अहंकार को छोड़कर, दीन-हीन

नहीं होता, तब तक सतगुरु पूरी तरह से उस पर प्रसन्न नहीं होता। राधास्वामी सद्गुरु के रूप में असहाय लोगों के लिए प्रकट होता है। जो व्यक्ति अपने प्रयास पर या अपने बलबूते पर विश्वास रखता है, वह शरणागत नहीं हो सकता है। इसलिये उसका काम बनने में देरी लगती है। भक्त को हमेशा नम्र होना चाहिए और अपने आपको पूर्ण रूप से सद्गुरु की शरण में प्रस्तुत करना चाहिए। वास्तव में, यह शरणागत की अवस्था अभयदान की अवस्था है। ज्यों ही भक्त अपने अहंकार को समाप्त करके खाली हो जाता है, तो सद्गुरु उसका अहंकार बनकर उसके सभी काम सहज में सम्पन्न करा देता है। इसलिये यहाँ कहा गया है कि सद्गुरु राधास्वामी निर्बल दीन-हीन असहाय लोगों का आश्रय हैं और उनकी दीनता के कारण तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

शोक समाचार

बड़े दु:ख के साथ सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि मानवता मन्दिर कार्यालय होशियारपुर के सुपरिंटैंडेण्ट श्री शिव प्रसाद जी का आकस्मिक निधन 22-1-91 को सायं 3 बजे हो गया।

मानवता मन्दिर तथा समस्त मानव परिवार श्री शिव प्रसाद जी के निधन पर गहरा शोक प्रकट करते हुए मालिके-कुल राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोकाकुल परिवार को इस असह्य दु:ख की घड़ी में सहनशक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको 16 सितम्बर 1990 तक के सत्संग-दौरे की सूचना दी थी। बम्बई के हवाई अड्डे पर करीब 25 सत्संगी, आचार्या निर्मला पंडित तथा उनके परिवार वाले, जिनमें से श्री रसूल आज़ाद, श्री ओम प्रकाश तिवारी, हैदराबाद से आये हुए श्री भगवान व्यास के नाम उल्लेखनीय हैं, हमारे स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर मौजूद थे। इस बार श्रीमती सरला भान भी हवाई अड्डे पर उपस्थित थीं। मैं आपको यह बताना भूल गया कि आबूधावी से श्री रवि पंडित की पत्नी हमारे साथ बम्बई चली थीं। श्री रवि पंडित जो आचार्या निर्मला पंडित के सुपुत्र हैं पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। उनकी पत्नी रेनुका भी उतना ही अगाध विश्वास रखती है। यहाँ पर मैं एक बात बताना चाहता हूँ, जो हर प्रकार के चमत्कार की व्याख्या, श्रद्धा और विश्वास के आधार पर प्रमाणित करती है।

मैंने पिछले वर्ष आपको बताया था कि हम श्री रवि

पंडित के विवाहोत्सव पर श्रीनगर गये थे। उसी दिन से ही रेनुका भी रवि पंडित की तरह सन्तमत में प्रविष्ट हो गई थी। जब वह पहिली बार अपने पति के पास आबूधाबी जा रही थी, तो मैंने परम्परा के अनुसार रवि और रेनुका को पुत्रप्राप्ति के लिए फल का प्रसाद दिया था। यद्यपि हम अमेरिका से आते समय आबूधावी न उतर सके थे। श्री रवि पंडित ने गर्भवती रेनुका को आशीर्वाद के लिए हमारे साथ ही बम्बई भेजा। श्रीमती रेनुका ने 17 नवम्बर को बहुत ही सुलक्षण पुत्र को जन्म दिया। जब रवि पंडित पुत्रप्राप्ति के तुरन्त बाद मेरे पास होशियारपुर आये, तो उन्होंने हमें बताया कि पाँचवें महीने के बाद आबूधावी में जब वहाँ के डाक्टर से अल्ट्रा साउण्ड से यह निदान किया कि आने वाला बच्चा लड़की है, तो रवि पंडित ने डाक्टर को कहा कि उनका निदान ग़लत है क्योंकि मानव दयाल जी महाराज ने उन्हें पुत्रप्राप्ति के लिए प्रसाद दिया था। वह डाक्टर हँसा और उसने कहा, "मिस्टर रवि पंडित! हमारा विज्ञान ग़लत नहीं हो सकता। मैं यह नहीं मान सकता कि तुम्हारे गुरु चमत्कार से लड़की को लड़का बना सकता है।" श्री रवि पंड़ित ने उत्तर दिया, "मेरे गुरु जी कभी ग़लत नहीं हो सकते क्योंकि सन्तमत की धारणा है, 'सन्त वचन पलटे नहीं, पलटे सब ब्रह्माण्ड'।" डाक्टर को फिर भी विश्वास नहीं हुआ। किन्तु 17 नवम्बर 1990 को श्री रवि पंडित और रेनुका का विश्वास सत्य प्रमाणित हुआ। मुझे यहाँ पर दुबारा इस बात पर ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है कि मन की शुद्धता और अगाध विश्वास वाला व्यक्ति ही इस प्रकार के चमत्कारों का अनुभव कर सकता है। यहाँ पर शुद्ध मन का अर्थ यही है कि साधक के मन में किसी प्रकार की ईर्ष्या-द्वेष और नफ़रत न हो।

इसी सम्बन्ध में इसी मासिक सन्देश में सद्गुरु के महत्त्व की व्याख्या करते हुए, इस विषय पर और प्रकाश डाला जायेगा ।

मैं आपको बता रहा था कि हम 16 सितम्बर को बम्बई पहुँचे और सीधे श्रीमती निर्मला पंडित के घर गये। वहाँ पर बहुत से सत्संगी पहिले से मौजूद थे। काफी समय तक वे बातचीत करते रहे। सायंकाल श्रीमती निर्मला पंडित के घर के निकट एक मन्दिर में सत्संग आयोजित किया गया। इस सत्संग पर बम्बई के बहुत से सत्संगी सम्मिलित हुए। जिस-२ को पता चला, वह दूर-२ से आये। सत्संग बहुत ही सफल रहा। सत्संगियों ने बहुत श्रद्धा और ध्यान से सत्संग का आनन्द प्राप्त किया।

इसी प्रकार 18 सितम्बर को भी प्रातःकाल का सत्संग हुआ और मैं कुछ पड़ोसियों के घर पर भी गया। 16 रात्रि को मैं श्रीमती निर्मला पंडित के छोटे लड़के दीपक के घर पर रहा। दीपक की सुयोग्या पत्नी आरुशी ने हमारी बहुत सेवा की। 17 प्रातःकाल को दीपक और आरुशी रसूल आज़ाद के साथ मेरे साथ समाधि में बैठे और वहाँ एक छोटा सा पारिवारिक सत्संग भी हो गया। 17 रात को हम सरला भान के यहाँ ठहरे। रसूल आज़ाद हमें हर जगह अपनी कार द्वारा ले गया। इसकी श्रद्धा, विश्वास और सेवा का कोई पारावार नही है। 18 रात्रि का विश्राम श्रीमती निर्मला पंडित के घर पर हुआ, क्योंकि उसी सायं-काल को वहाँ सत्संग भी आयोजित किया गया था। हम 19 प्रातःकाल को वायुयान द्वारा बम्बई से रवाना होकर करीब साढ़े नौ बजे देहली पहुँच गये। उस दिन श्री के. पी. वर्मा के घर पर बहुत से सत्संगी परामर्श के लिए आते रहे। 20 सितम्बर सायंकाल फरीदाबाद में हमारे निबास-

स्थान पर सत्संग आयोजित था। इस सत्संग में आशातीत भीड़भाड़ थी। श्रद्धालु सत्संगी न ही केवल देहली और फरीदाबाद से वरन् दूर-२ से आगरा और मथुरा से तथा अन्य उत्तर प्रदेश के नगरों और गाँवों से इस सत्संग में सम्मिलित हुए। यह सत्संग बहुत ही प्रभावशाली था और ऐसा लगा कि हमारा निवासस्थान आध्यात्मिकता का आकर्षक केन्द्र बन गया है। 21 सितम्बर प्रातःकाल मैं मानवता मन्दिर में मासिक सत्संग के लिए नई दिल्ली से शाने पंजाब से रवाना होकर दिन के साढ़े बारह बजे जालन्धर पहुँच गया था। उसी दिन 3 बजे दोपहर को सन्त नगर जालन्धर में मेरे परमप्रिय त्रिलोक शर्मा के घर पर सत्संग आयोजित हुआ। कुमारी साधना और आचार्य शब्दानन्द जालन्धर पहुँच गये थे। सत्संग के बाद हम कार द्वारा सायंकाल 6 बजे जालन्धर से होशियारपुर पहुँच गये।

यद्यपि छात्रों के मंडल-विरोधी आन्दोलन के कारण सारे भारत में स्थिति गम्भीर थी तथापि 22 सितम्बर को ही मासिक सत्संग के लिए हमारे सत्संगी भारी संख्या में दूर-२ से मानवता मन्दिर पहुँच गये थे। उसी दिन सायंकाल एक बहुत ही प्रभावशाली सत्संग हुआ। 23 सितम्बर प्रातः-काल बटाला के सत्संगियों ने बड़ी श्रद्धा और उत्साह से सभी सत्संगियों की नाश्ते और चाय से सेवा की। यद्यपि बटाला के सभी सत्संगी बहुत उत्साही और परम श्रद्धालु हैं, तथापि मेरे परमप्रिय डा० चन्द्र नगेश नेगी, मास्टर कुलदीप शर्मा, श्री राम प्रताप और श्री देव राज हरएक मासिक सत्संग पर अवश्य आते हैं। मैं सभी बटाला के सत्संगियों को सद्भावना और आशीर्वाद देता हूँ और चाहता हूँ कि इन सत्संगियों का उत्साह उनकी श्रद्धा और उनका सेवाभाव विश्व के सभी सत्संगियों को प्रेरणा दे। 23

सितम्बर का सत्संग अत्यन्त उत्कृष्ट और प्रेरणादायक था। ऐसा लगता था कि सत्संग के दौरान में सभी श्रोतागण समाधिस्थ अवस्था में चले गये थे। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं केवल यही कह सकता हूँ कि मैं स्वयं एक अचेतन एवं परमानन्द की अवस्था में डूबा रहा और होश आने पर मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने आपको सत्संग दे रहा था।

सारे देश की कानून की व्यवस्था सितम्बर के पिछले सप्ताह में बहुत नाजुक थी। होशियारपुर से देहली के रास्ते सब बन्द हो गये और रेलगाड़ियाँ भी निरस्त कर दी गईं। इन अनिवार्य परिस्थितियों में न तो मोदी नगर जा सका और न दशहरे के सत्संग पर देहली पहुँच सका। मेरे स्थान पर दशहरे के अवसर पर मेरा टेपरिकार्ड का सत्संग सुनाया गया और श्री के. पी. वर्मा तथा माता जी ने सत्संग सफल बनाया।

भाग्य माता जी के कहने के अनुसार आचार्य श्री के.पी. वर्मा का गुरुभक्ति पर दिया गया सत्संग बहुत ही प्रभावशाली था। मैंने दशहरे के सत्संग के स्थान पर 4 नवम्बर 1990 को सालवान पब्लिक स्कूल देहली में एक विशेष सत्संग कराने की घोषणा की। अक्टूबर का सारा महीना बिना किसी बाहरी दौरे के रहा। इस महीने में मासिक सत्संग 20 अक्टूबर को सफलतापूर्वक मनाया गया। दैनिक तथा साप्ताहिक सत्संगों के अलावा इस महीने के दौरान में मेरा अधिक समय सत्संग आदि लिखने में, 'गुलिस्ताने हज़ार रंग" पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद करने और प्रतिदिन सत्संगियों की समस्याएँ सुलझाने और परामर्श देने में गुज़रा। जहाँ तक गुलिस्ताने हज़ार रंग के अंग्रेज़ी अनुवाद का सम्बन्ध है, इस पुस्तक के सम्पादक तथा संकलनकर्त्ता दाता दयाल जी के वरिष्ठ जीवित शिष्य देहली निवासी श्री मोहन लाल जी

के आग्रह पर किया जा रहा है। इस अनुवाद में मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है। उसका एक कारण यह है कि इस पुस्तक में जितने दाता दयाल जी के, कबीर साहिब के और दूसरे ऋषियों और सन्तों के छन्दबद्ध शब्द हैं, उन सबका अनुवाद मैं अंग्रेज़ी कविता में कर रहा हूँ। कई बार ऐसा लगता है कि मेरा अनुवाद-अनुवाद नहीं, बल्कि एक सजग मौलिक कविता है। जब यह पुस्तक अंग्रेज़ी भाषा में छपेगी, तो पश्चिम में यह बहुत ही चाह से पढ़ी जायेगी, जिसके फलस्वरूप राधास्वामी मत एवं मानवता धर्म का भी विश्व में प्रचार हो जायेगा।

नवम्बर के महीने में मानवता मन्दिर की मुख्य गति-विधि 18, 19 नवम्बर को परम दयाल जी महाराज की जन्म-बरसी मनाया जाना और 26 नवम्बर को अमेरिका की संस्था A.R.E. के 20 सदस्यों का मानवता मन्दिर में आगमन और उनके स्वागत में एक विशाल सत्संग का आयोजन था। 18, 19 नवम्बर के उत्सव पर सत्संगी भारी संख्या में दूर-२ से उत्साहपूर्वक सम्मिलित होने के लिए आये। इस उत्सव की वीडियो फिल्म ली गई है,जो सत्संगियों को समय-२ पर दिखाई जायेगी। A.R.E. के 20 सदस्यों का शिष्टमंडल 25 नवम्बर को न्यूयार्क से देहली पहुँचा था। उसी दिन सायंकाल मैंने इस शिष्टमंडल को ओबराय होटल दिल्ली में सम्बोधित किया। इस शिष्टमंडल के निर्देशक डा० चार्ल्स टामस के. सी. ने अपने प्रवचन में कहा कि वे महाराज जी के बहुत कृतज्ञ हैं, क्योंकि उन्हींकी प्रेरणा से ही यह शिष्टमंडल भारत और नेपाल का दौरा करने के लिए आया था। डा० चार्ल्स टामस के.सी. अमेरिका के विख्यात सिद्धिप्राप्त सन्त स्वर्गीय श्री एडगर के. सी. के पोते हैं और अमेरिका की उस अन्तर्राष्ट्रीय A.R.E. संस्था

के अध्यक्ष हैं, जिसने पाँच बार परमसन्त परम दयाल पंडित फकीर चन्द जी महाराज को अपनी संस्था में सत्संग देने के लिए अमेरिका आमन्त्रित किया था। परम दयाल जी महाराज ने 1969 में इसी संस्था के उस शिष्टमंडल को देहली के मेडन होटल को सत्संग दिया था, जिसका नेतृत्व उस समय डा० चार्ल्स टामस के. सी. के योग्य स्वर्गीय पिता श्री ह्यलिन के. सी. ने किया था। पाँच वर्ष पूर्व श्री ह्यलिन के. सी. का स्वर्गवास हो गया। 1969 वाले शिष्टमंडल ने सारे विश्व का दौरा किया था और तीर्थस्थानों का भ्रमण करने के अलावा विश्व के माध्यात्मिक नेताओं को भी मिला।

यहाँ पर मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि यह शिष्टमंडल यूरोप में अनेक सिद्धिप्राप्त व्यक्तियों को मिला। उनमें से हालैण्ड का एक ऐसा व्यक्ति था, जिसने उनकी आँखों के सामने एक ऐसे कुत्ते को स्वस्थ कर दिया जो मोटर गाड़ी की दुर्घटना में ज़ख्मी हो गया था और उसकी टाँग टूट गई थी। उस व्यक्ति ने अपने हाथों की किरणों से उस कुत्ते को स्वस्थ कर दिया। भारत में भी यह लोग अनेक आध्यात्मिक नेताओं और सिद्धिप्राप्त व्यक्तियों को मिले। फिलीपीन में यह ऐसे सिद्धिप्राप्त लोगों को मिले, जो मरीज़ों के सूक्ष्म शरीर की शल्यचिकित्सा करके उन्हें रोग-मुक्त कर सकते हैं। फिलिपीन में इन्होंने ऐसे लोगों का तमाशा भी देखा, जो नंगे पाँव जलते हुए अंगारों पर चल सकते थे। जब यह लोग विश्व के भ्रमण के बाद न्यूयार्क पहुँचे, तो ह्यलिन के. सी. ने हज़ारों लोगों की सभा में वक्तव्य देते हुए कहा, "हमारे इस दौरे पर हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि परमसन्त परम दयाल हज़ूर फकीर चन्द जी महाराज से भेंट थी। इस समय विश्व में वह सबसे ऊँचे

और नच्चे सन्त हैं और इनके विचार और अनुभव मेरे दादा एडगर के. सी. से मेल खाते हैं।" इस सभा में मैंने भी अपने विचार प्रकट किये थे, जिसके फलस्वरूप A.R.E. की संस्था मानवता मन्दिर से सहयोग करने लगी। इसके बाद ही A.R.E. ने परम दयाल जी को अमेरिका में आमन्त्रित करना आरम्भ किया।

25 नवम्बर 1990 को डा० चार्ल्स टामस के. सी. तथा उनका शिष्टमंडल मेरे साथ फ्रण्टीयर मेल के द्वारा रात्रि को दिल्ली से रवाना होकर प्रातःकाल साढ़े चार बजे जालन्धर पहुँचा। जालन्धर में एक होटल पर नाश्ता करने के पश्चात् हम सब एक वातानुकूलित बस में मानवता मन्दिर होशियारपुर पहुँचे। यहाँ पर इन सबका भव्य स्वागत किया गया। मानवता मन्दिर मुख्यद्वार से लेकर प्रांगण तक सजा हुआ था। प्रांगण में बहुत ही सुन्दर शामियाना लगा था। मंच के ऊपर स्वागत के अंग्रेज़ी भाषा में वाक्य लिखे थे। शामियाने का नीलवर्ण था और सारा मंडप नीले रंग में निखर रहा था। मंच पर विदेशी अतिथियों के कारण कुर्सियाँ लगी हुई थीं। ज्यों ही हम लोग बस से उतरे आचार्य शब्दानन्द, कु० साधना सक्सैना, श्री एस. एल. सेठी, प्रिन्सीपल भारद्वाज जी, श्री नारायण दास डोगरा तथा अन्य मानवता मन्दिर के कार्यकर्त्ताओं और ट्रस्ट के सदस्यों ने हम सब का फूलमालाओं से स्वागत किया। शिष्टमंडल के सभी सदस्य इस स्वागत से अत्यन्त प्रभावित और प्रफुल्लित हुए। यह सभी लोग मेरे पीछे-२ डा० चार्ल्स टामस के. सी. के नेतृत्व में परम दयाल जी की समाधि पर श्रद्धाञ्जलि देने के लिए आये और इसके बाद उन्हें परम दयाल जी महाराज की मूर्ति का अनामी मन्दिर में दर्शन कराया गया।

इसके बाद सभी लोग मंडप में आ गये और उत्सव की

कार्यवाही आरम्भ हुई। आचार्य शब्दानन्द से अंग्रेज़ी भाषा में आगन्तुकों का स्वागत किया और बहुत ही अच्छे ढंग से उन्हें बताया कि परम दयाल जी महाराज द्वारा चलाया गया मानवता मन्दिर आज भी सुयोग्य नेतृत्व में विश्व में मानवता को जगाकर विश्व-शान्ति के उद्देश्य में आगे बढ़ रहा है। मैं आपको इस उत्सव की संक्षिप्त सूचना इसलिये दे रहा हूँ क्योंकि आप वीडियो फ़िल्म में इस सारी कार्यवाही को देख सकते हैं। चार्ल्स टामस के. सी. ने अपने प्रवचन से पहिले सभी उपस्थित सत्संगियों को और A.R.E. के सदस्यों को थोड़े समय के लिए आँखें बन्द करके समाधि लगाने को कहा और उसके अन्त में भारत तथा विश्व के कल्याण की कामना की। डा० के.सी. ने बताया कि वह भारत में और विशेषकर मानवता मन्दिर में अनमोल तत्त्वों को समझने के लिए आये हैं, जिनके आधार पर उनके पितामह श्री एडगर के. सी. ने पश्चिम में आध्यात्मिकता का प्रचार किया था।

साधु आश्रम के डा० कृष्ण मुरारि ने अपने द्वारा रचित संस्कृत में कविता का पाठ किया, जिसमें उन्होंने मानवता मन्दिर के उद्देश्यों का वर्णन किया और आये हुए अतिथियों का स्वागत किया। मेरे सत्संग के आरम्भ होने से पहिले श्रीमती सीता देवी ने शब्द पढ़ा और कुमारी साधना ने 'ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भण्डार से' दाता दयाल के शब्द का पाठ किया। आचार्य शब्दानन्द ने इसी शब्द का अंग्रेज़ी भाषा में छन्दबद्ध अनुवाद पढ़कर सुनाया। मेरा सत्संग द्विभाषी था, क्योंकि मैंने पहिले हिन्दी में फिर अंग्रेज़ी भाषा में अपने अनुभव और विचार प्रकट किये। मैंने सत्संगियों को बताया कि यद्यपि A.R.E. की संस्था मानवता मन्दिर और परम दयाल जी से सन् 1969 से सम्बन्धित

चली आई है और यद्यपि भारत में उनका यह चौथा शिष्ट-मण्डल आया था, तथापि पहिली बार ही यह शिष्टमंडल मानवता मन्दिर होशियारपुर में आया। यह एक प्रसन्नता का विषय था कि परम दयाल जी महाराज के विचारों से प्रभावित यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था मानवता मन्दिर की यात्रा की प्रबल इच्छा को पूरा कर सकी। अमेरिकन अतिथि हमारे सत्संगियों के बीच बैठे हुए पूर्व और पश्चिम के मिलाप को प्रकट कर रहे थे। जब दाता दयाल जी का शब्द पढ़ा जा रहा था, तो सभी अमरीकी अतिथि आँखें बन्द करके संगीत का आनन्द ले रहे थे और डा० के. सी. तो समाधिस्थ हो गये थे।

मैंने हिन्दी में अपने सत्संगियों को बताया कि A.R.E. के सदस्यों का मानवता मन्दिर में आना आध्यात्मिकता के इतिहास में और मानवता मन्दिर के इतिहास में एक खास महत्त्व रखता है। मानवता धर्म और A.R.E. की संस्था जिसका अर्थ "खोज और आत्मज्ञान की संस्था" है, एक ही उद्देश्य को लेकर चल रही है। मैंने सत्संगियों को अवगत कराया कि परम दयाल जी महाराज ने किस प्रकार 1972, 1976 1978, और 1980 में अमेरिका में A.R.E. संस्था में अपने सत्संगों पर अमृतबर्षा की थी। मैंने यह भी बताया कि किस प्रकार पिछले 18 वर्षों में A.R.E. और मानवता मन्दिर मिलकर सहयोग से विश्व में आध्यात्मिकता का प्रचार कर रहे हैं। डा० चार्ल्स टामस के. सी. के पितामह श्री एडगर के. सी. ने सन् 1910 से ही अपनी समाधिस्थ अवस्था के अनुभवों के आधार पर अमेरिका में पुनः जन्म और कर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया था। अंग्रेजी में सत्संग देते हुए मैंने अतिथियों को आत्मज्ञान का परिचय देते हुए, राधास्वामी नाम का महत्त्व भी बताया

और उनका ध्यान ईसाई धर्म में गुप्त सुरत-शब्द योग की ओर आकर्षित किया। इस सत्संग का हिन्दी अनुवाद किसी समय मानव मन्दिर में प्रकाशित हो जायेगा। इसलिये यहाँ पर मैं इतना कहना चाहता हूँ कि इस उत्सव पर प्रिन्सीपल एस. एन. भारद्वाज जी ने अन्त में अतिथियों को धन्यवाद देते हुए एक बहुत ही उत्कृष्ट सत्संग दिया।

मानवता मन्दिर की ओर से अतिथियों को और बहुत से सत्संगियों को दोपहर का भोजन दिया गया। हालाँकि अमरीकी अतिथियों ने देहली में ऊँचे से ऊँचे होटल में खाना खाया था, तथापि जिस प्रेम-भाव से उन्हें मानवता मन्दिर में भोजन दिया गया, वह उससे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भारतीय व्यंजनों का आनन्द लेते हुए बहुत उत्साह से भोजन खाया। क्योंकि मैं उनके साथ धर्मशाला, बनारस उदयपुर और दिल्ली में भी रहा। वह अन्त तक यही कहते रहे कि जो भोजन का आनन्द उन्हें मानवता मन्दिर में मिला, उसका अन्यत्र किसी जगह भी मुकाबला नहीं। इस सम्बन्ध में मुझे कहना पड़ेगा कि हमारे सत्संगियों और मानवता मन्दिर की उन महिलाओं को इसका श्रेय मिलना चाहिए। इस सम्बन्ध में श्रीमती रेणु खन्ना, श्रीमती शमा नन्दा, श्रीमती राजकुमारी, श्रीमती स्वदेश मल्हन, कु० साधना और कु० पूजा के नाम उल्लेखनीय हैं। भोजन के बाद सभी A.R.E. के सदस्य मेरे उस कक्ष में एकत्रित हुए, जिसमें परम दयाल जी महाराज समाधि में बैठा करते थे। यहाँ पर ये सब 20 मिनट तक समाधि में बैठे। बाद में इन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने अपने जीवन में, जो समाधि का आनन्द उस कक्ष में अनुभव किया, वह और कहीं नहीं किया था। इसके फ़ौरन बाद सभी अतिथि धर्मशाला जाने के लिए बस में बैठने लगे। मैंने देखा कि उनमें से एक

महोदय श्री जिगमाण्ड अभी तक मेरे कक्ष में समाधि में बैठे हुए थे। उनको बड़ी मुश्किल से उठाया गया। बाद में उन्होंने मुझे बताया कि वह एक बार फिर मानवता मन्दिर में विशेषकर समाधि के लिए आना चाहते हैं।

संक्षेप में मैं आपको बताना चाहूंगा कि यह शिष्टमंडल बनारस और नेपाल गया। समय के अभाव के कारण मैं उनके साथ केवल बयारस तक गया और दो दिसम्बर को होशियारपुर वापिस आ गया। बनारस में भी अशोका होटल में एक सत्संग हुआ, जिसमें लखनऊ,इलाहाबाद और बनारस तथा खानपुर के हमारे सत्संगी सम्मिलित हुए। क्योंकि बनारस के बाद मैं तीन दिन होशियारपुर में रहा। पाँच दिसम्बर को मैं सुपरफास्ट ट्रेन के द्वारा जालन्धर से रवाना होकर 4 बजे सायंकाल नई दिल्ली पहुँच गया। क्योंकि उसी दिन A.R.E. का शिष्टमंडल भी नेपाल से वापिस आ गया था। हाली डे मेकर्स ओफ इण्डिया के मालिक श्री ओ. पी. आहूजा ने मेरा ठहरने का प्रबन्ध भी शिष्टमंडल के साथ रौरीटन ताज होटल में कर दिया। किन्तु मैं सायंकाल श्री के. पी. वर्मा के घर गया और होटल की बजाय मैंने श्रीमती सुधा वर्मा के द्वारा प्रेम से बनाया हुआ भोजन किया। मैंने श्री के. पी. वर्मा को मेरे साथ होटल में रात को ठहरने का आग्रह किया, जिसको उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। प्रातःकाल 4 बजे श्री धर्मेन्द्र गुप्ता तथा उनकी सुयोग्या पत्नी हमें हवाई अड्डे पर ले गये क्योंकि मेरी उड़ान साढ़े पाँच बजे प्रातः की थी। उदयपुर जाते हुए हमारा वायुयान आधे घण्टे के लिए जयपुर रुका। यद्यपि उदयपुर के यात्रियों को जयपुर हवाई अड्डे के अन्दर जाने की आज्ञा नहीं थी। सौभाग्यवश मुझे किसीने न रोका और मैं वायुयान से उतर गया। इसका कारण यह था कि

हवाई अड्डे पर मेरे भाई श्री महाराज कृष्ण शर्मा, भाग्य माता जी, श्री घनश्याम और जयपुर के करीब आठ-दस सत्संगी मुझे मिलने के लिए हवाई अड्डे पर मौजूद थे। इन सबने बड़ी श्रद्धा से मेरा फूलमालाओं से स्वागत किया। इन्होंने मुझे बताया कि उसीदिन जयपुर में श्री मोती चन्द गोलच्छा ने भाग्य माता जी की उपस्थिति में A.R.E. शिष्टमंडल के लिए एक शानदार स्वागत सभा का आयोजन किया था। बाद में जब A.R.E. के लोग मुझे दूसरे दिन उदयपुर में मिले, तो उन्होंने बताया कि जयपुर में उनका स्वागत अत्यन्त शानदार था।

मैं उदयपुर 6 दिसम्बर को ही प्रातःकाल पहुँच गया। उदयपुर विश्वविद्यालय की दर्शन विभाग की रीडर डा० गिरजा व्यास ने मेरा हवाई अड्डे से उदयपुर विश्व-विद्यालय के विश्रामगृह तक पहुँचने के लिए एक कार भेज दी थी। सारा दिन मेरे पुराने छात्र और उदयपुर विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर मुझे मिलने के लिए आते रहे। डा० गिरजा व्यास और श्री जे. जी. मैसी काफी समय तक मेरे पास रहे। उन्होंने मुझे बताया कि 7 और 8 दिसम्बर को उन्होंने चार स्थानों पर A.R.E. के शिष्टमंडल के स्वागत का प्रबन्ध किया था। दूसरे दिन प्रातःकाल A.R.E. का शिष्टमंडल Palace on Wheels, नामक रेलगाड़ी के द्वारा उदयपुर नगर के स्टेशन पर पहुँचा। प्रातःकाल 9 बजे से 12 बजे तक उन्होंने सिटी पैलेस आदि का दौरा किया और सायंकाल 3 बजे वे सब वातानुकूलित बस में सहेलियों की बाड़ी आदि भव्यस्थानों को देखने के लिए गये। सायंकाल 6 बजे हमारे A.R.E. के सदस्यों ने अन्य यात्रियों से अलग होकर मेरे साथ 'मीरा कला निकेतन' के प्रोग्राम पर जाने का निर्णय किया। यहाँ मैं आपको बताना चाहता हूँ कि

"Palace on Wheels" राजस्थान सरुकार द्वारा चलाई गई एक शानदार रेलगाड़ी है जिसमें हरएक यात्री से ढाई हज़ार रुपये प्रतिदिन लिया जाता है और उन्हें भोजन आदि भी रेलगाड़ी में दिया जाता है। A.R.E. के सदस्यों के अतिरिक्त उस रेलगाड़ी में 70 के करीब अन्य विदेशी यात्री भी थे। इन सभी यात्रियों का उदयपुर में भ्रमण का प्रबन्ध Palace on Wheels की ओर से था और यह सब इकट्ठे ही दो बसों में शहर का भ्रमण करने के लिए निकले थे। किन्तु 6 बजे A.R.E. के सदस्य इनसे अलग हो गये, क्योंकि उन्होंने कला निकेतन में हमारे साथ साँस्कृतिक कार्यक्रम में शामिल होने के लिए जाना था। इस कला निकेतन का संचालन मेरे एक पुराने मित्र श्री आर. सी. भट्ट कर रहे हैं। भट्ट जी राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग के अवकाश-प्राप्त निर्देशक हैं और सार्वजनिक सेवा में लगे हुए हैं। उनकी संस्था ने छोटे बच्चों से लेकर प्रौढ़ कलाकारों द्वारा गायन, वाद्य, संगीत, नृत्य और नाटक का बहुत सुन्दर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। A.R.E. के सदस्यों ने कहा कि यह कार्यक्रम पूरा चलना चाहिए, हालाँकि ऐसा करने से उन्हें आवश्यकता से अधिक वहाँ देरी तक बैठना पड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कार्यक्रम बहुत उच्च कोटि का और आकर्षक था। मेरे प्यारे अमरीकन जिज्ञासु इस प्रोग्राम से बहुत ही प्रभावित हुए। हम सब उस संस्था में काफ़ी देर तक रहे, इसका परिणाम यह हुआ कि शिष्टमंडल बिना रात्रि का भोजन किये 8 बजे ही स्थल आश्रम पर आदरणीय महन्त श्री मुरली मनोहर शरण द्वारा आयोजित सार्वजनिक सभा में सम्मिलित हुए। यह कार्यक्रम दो घण्टे तक चला। यहाँ पर अन्य विद्वानों के अतिरिक्त डा० गिरजा व्यास ने बहुत अच्छा स्वागत-भाषण दिया। सभा के आरम्भ

में मेरा और सभी A.R.E. के सदस्यों का व्यक्तिगत रूप से श्रद्धापूर्वक फूलमालाओं द्वारा स्वागत किया गया। A.R.E. के सदस्य इस स्वागत को देखकर कृतकृत्य हो गये और उनकी आँखों में प्रसन्नता के अश्रु टपक पड़े। मैंने A.R.E. की संस्था का परिचय दिया। डा० चार्ल्स टामस के. सी. ने बहुत ही अच्छा पुनर्जन्म और कर्मसिद्धान्त के बारे में प्रवचन दिया और कहा कि वे लोग भारत में आध्यात्मिकता की उन जड़ों से सम्बन्धित होने के लिए और सीखने के लिए आये हैं, जिनके आधार पर उनके पितामह एडगर के. सी. ने एक ऐसे दर्शन का प्रचार किया, जिसके अनुसार पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त और समाधि को ईसाई धर्म के अंग मान लिया गया। महामहिम महन्त श्री मुरली मनोहर शरण ने अपने स्वागत-भाषण में वैदिक विचार में परामनोविज्ञान की व्याख्या करते हुए बताया कि समाधि द्वारा हरएक व्यक्ति में सिद्धियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। जब उन्होंने सभी उपस्थित भारतीय और अमेरिकन श्रोताओं को थोड़ी देर के लिए समाधि लगाने के लिए कहा और उन्होंने स्वयं इस समाधि का नेतृत्व किया, तो उन्होंने सभी का ध्यान A.R.E. की वर्जिनिया से आई हुई उस महिला की ओर आकर्षित किया, जो पद्मासन लगाकर बैठी हुई थी। उन्होंने सैकड़ों भारतीय श्रावकों और छात्रों को कहा कि उन्हें इस महिला से शिक्षा लेनी चाहिए। महन्त जी ने ओंकार की ध्वनि से ऐसी गहन समाधि लगवाई कि सभी सम्मिलित होने वाले लोगों पर मस्ती छा गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल साढ़े नौ बजे उदयपुर विश्व-विद्यालय में इस शिष्टमंडल के लिए छात्रों और प्रोफेसरों की एक सभा आयोजित की गई जिसमें उदयपुर विश्व-विद्यालय के कला संकाय के निर्देषक डा० मूल चन्द्र शर्मा

भी सम्मिलित हुए। इस आयोजन में डा० चार्ल्स टामस के. सी. ने अपने वक्तव्य में बताया कि उनकी संस्था किस प्रकार कर्म और पुनर्जन्म के सम्बन्ध में लगातार खोज कर रही है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि डा० मूल चन्द्र शर्मा, जो मेरे शिष्य रहे हुए हैं,कला संकाय के निर्देशक और संस्कृत विभाग के अध्यक्ष होते हुए भी अंग्रेज़ी भाषा में बहुत सुन्दर ढंग से बोले और उन्होंने शिष्टमडल को उदयपुर विश्व विद्यालय के अनुसंधान के सम्बन्ध में विस्तृत व्याख्या दी,इसी प्रकार मेरे दूसरे शिष्य डा० श्याम राव व्यास ने दर्शन विभाग के सम्बन्ध में अनुसंधान का परिचय देते हुए शिष्ट-मंडल को बताया कि उनका अपना Ph.d. का विषय भी पुनर्जन्म और कर्मसिद्धान्त था, जो उन्होंने मेरी देखरेख में आरम्भ किया था। डा० के. सी. इन सब प्रवचनों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने घोषणा की कि वह उदयपुर विश्व-विद्यालय में पुनर्जन्म और कर्म के अनुसंधान के लिए एक पीठ कायम करने के लिए अनुदान देंगे।

इसके बाद शिष्टमंडल के सभी सदस्य तीन बालकों के उपनयन संस्कार में सम्मिलित होने के लिए डा० गिरजा व्यास के घर पर गये। उनका यह अनुभव उनके लिए बहुत ही रोचक था। उनमें से तीन सदस्यों ने उस उत्सव की वीडियो फिल्म ली। इसके तुरन्त बाद वे सब Palace on Wheels द्वारा एक बजे दोपहर जैसममेर के लिए रवाना हो गये उन्होंने उदयपुर के सभी कार्यक्रमों की बहुत सराहना की और कहा कि उनके जीवन में, उनका उदयपुर का दौरा एक अमिट स्मृति रहेगा। मैं 9 दिसम्बर को ही वायुयान द्वारा सायंकाल साढ़े पाँच बजे तक देहली पहुँच गया। 13 दिसम्बर को उस शिष्टमंडल को विदा करके हम 14 दिसम्बर को शाने पंजाब द्वारा दिल्ली से रवाना होकर 3

बजे दोपहर तक होशियारपुर पहुँच गये। जहाँ तक इस मासिक सन्देश का सम्बन्ध है, सत्संग-दौरे की ऊपर दी गई सूचना पर्याप्त रहेगी। समय और स्थान के अभाव के कारण मुझे सन्तमत के पहिले सोपान सद्गुरु की व्याख्या अगले मासिक सन्देश तक स्थगित करनी पड़ रही है। मैं इसलिये आपसे क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि सद्गुरु सोपान के सम्बन्ध में मैं आपको अगले महीने सुन्दर रूप से यह बताऊंगा कि सद्गुरु का क्या अर्थ है और क्या महत्त्व है। इन शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की शुभ-कामना भेजता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि यह सन्देश आपके लिए सुखद और लाभप्रद प्रमाणित हो।

सबको हार्दिक आशीर्वाद और राधास्वामी!

आपका फकीरमय
मानव

शोक समाचार

बड़े दुःख के साथ सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि मानवता मन्दिर होशियारपुर के आनरेरी आडिट आफिसर एवं शिक्षा समिति के सेक्रेटरी श्री जगत राम बाली का निधन गत 31-12-90 को हो गया। श्री बाली अत्यन्त कर्मठता एवं आस्थापूर्वक मन्दिर की सेवा करते रहे हैं।

मानवता मन्दिर तथा समस्त मानव परिवार श्री जगत राम बाली जी के निधन पर गहरा शोक प्रकट करते हुए मालिकेकुल राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके शोकाकुल परिवार को इस असह्य दुःख की घड़ी में सहनशक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Feb. 10th, 1991

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur (Pb.) India.

WHAT IS MANTRA AND WHAT IS TANTRA

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj
M.A.,LL.D.
(Translated by H. H. Manav Dayal Dr. I.C. Sharma)

What is Mantra ? This word is derived from the Sanskrit root 'Mantree' which means advice or suggestion. The partial meaning of Mantra is the divisions or section of the Vedas. In the first section there are prayers addressed to the Devatas (gods). In the second section there is the praise of Lord Brahma. I do not say that the path of Mantra is good and that of the Tantra is bad. The good path is that, the end of which is good. It is possible that one among millions may reach the highest goal of spirituality through the path of Tantra, because most of the people are caught up in sensuous pleasures so badly that they cannot get out of the net of illusion. But by following the path of Mantra even if one may not succeed in one life, he is bound to reach the goal in his next lives.

People have different tendencies. Some have divine tendencies, while the others possess demonic tendencies. It is possible that someone may reach the highest goal by following the path of Tantra. But many people attain the highest goal by following the path of Mantra. Even then it cannot be said that either of these two paths is devoid of spiritualism. The path of Mantra is called the path of 'shreas' the well-being of human beings, while the path of Tantra is the path of 'preas', sensuous pleasures only. The path of sensuous pleasures binds us with worldly affairs, while the path of Mantra leads us towards the highest goal of liberation. The path of Mantra is also called the white or light path and the path of Tantra is the dark path. The path of Mantra is sattvik, path or the path of light and intellect, while the path of Tantra is 'tamasik' path, the path of darkness and heaviness. The significance of both these paths has been elaborated. You are free, to adopt either of these paths. But before adopting these paths, the following facts should be kept in view.

(1) The first condition is that one should be fearless. The people who are of fearful nature should practice the virtue of patience. The wealth of spiritualism cannot be achieved by weak and fearful persons.

(2) The second condition is carefulness, patience and firmness in thought. Persons who have these qualities will certainly succeed in life, while the people

devoid of these qualities will never get rid of their illusions, and never attain the stage of spiritualism. The people who have control on their senses and are disciplined, usually have more patience. People who hurry all the time are crazy. The nations, or races who are in the habit of hurrying, having no patience disappear soon from the earth like the secsonal plants or flowers. The Hindu race has proved to be the most worthy from the point of view of patience. That is why it has survived for centuries while other civilizations have disappeared from the face of the earth. The condition of patience is more significant then even knowledge for the attainment of spiritualism. When a person forms the habit of patience, he automatically marches towards spirituality gradually.

The aspirant or devotee, who meditates regularly should never be caught up in the net of Maya, or illusion and should be fearless. If he does not possess the quality of fearlessness and is not free from the domain of Maya, he may miss the opportunity of attaining liberation in this life and may have to wait for many lives to achieve the highest goal.

These are some important steps to advance towards spiritualism. But this doesn't mean that one should leave this world. One should live in this world, enjoy everything. But he should earn his livlihood with honest means and practive spiritualism in his worldly life. Just as one attains perfection in

music, painting and other fine arts by putting one's mind who heartedly, similarly one should practice spiritualism most seriously and honestly. Then success is sure.

The tendency of spiritualism is not present only in human beings, but it does exist even in the plants and the animals. But on account of not being completely developed in mind and brain (like human beings) they do not have the power of discrimination. In fact even the minerals have the tendency of spiritualism, but it is sleeping, it is not active at all.

The aim, or goal of spiritualism is to make a person perfect or a Mahatma a greatman. Nobody can understand the meaning of perfection until he is initiated in the path of spiritualism. An initiated devotee having control over his sense organs never wastes his physical, mental and spiritual energies uselessly. Too much of physical energy is not needed in the path of spirituality, yet good health is very nessary to ward off diseases. A healthy body does help the mind to concentrate and with the help of concentration of mind one advances farther spiritually.

Spirituality should have such a deep influence on one's mind that it should remain constantly in one's life till death. When one attains this state of spirituality, then one will be like seed in which, the potentialities of sprouting turning it into a tree and bearing fruits are present. When

all the ideas and thoughts in the form of a seed are present in the practitioner of spirituality so deeply that they remain in him throughout his life and after his death easily enter his mind even in next birth. You might have heard that Rajput Knights would continue to fight in the battlefield for sometime, even after their heads were cut off from their bodies. Similarly, a devotee or practitioner in spirituality sticks to spirituality under all circumstances. Such is the influence of the ingrained tendencies.

Consider a person who maintains his balance of mind during his conscious as well as waking life to be courageous, because he is extremely intelligent. Thought has great power especially the spiritual thought does miracles. Even poisen doesn't have its effect on the person whose spiritual thought is strong. There are many historical stories in this context. You might have heard the story of Sant Meera, who drank a whole cup of poison, but it had no effect. She did not die. In the stories of Bhaktimal, an honest devotee named Angad was given poison by his sister mixed with his food. He put that food in front of the image of God. But soon after he came to know that poison had been put in his food. He didn't reject the food and ate it considering it to be blessed by God. But he did not die. If somebody is bitten by a serpeant without his knowledge, nothing happens. But if one comes

to know about it, he dies of poison, because of his weak thought. That is the influence of thought. In fact the reserviors of nectar and poison both are within the body of a man. The practitioner's current of thought is always connected with the reservoir of nectar and influences him continuously.

It is essential for the practitioner of spirituality to avoid lust, anger, greed, attachment and egotism. Jealousy and hatred are his greatest enemies. The cruel, ruthless persons, causing sufferings to others are devoid of spirituality. A person with irritable nature, bigotory and obstinacy is far away from spirituality. The real essence of spiritualism lies in one pointedness or fixation of mind. If a person has one pointedness and understands spirituality even partially, the kingdom of heaven or earth has no significance for him.

These are the teachings of the saints, which many people don't understand. There are numerous techniques of practice of meditation. As far as I know that practice of Surat-Shabda-Yoga (the Yoga of Light and Sound) is simple and most effective.

Journal Man Magan
February 1935 PP 65-73

Stars and their Influence and the Theory of Karma

by

Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

I have come across scores of saints and Mahatamas and also studied the lives of many saints. I know that except a few all of them suffered from serious physical ailments. Why did they suffer ? They suffered because of their deeds or Karmas of this life or previous lives. Everybody who comes into this world reaps the fruit of his or her Karmas. There is no escape, no exception.

One of my disciples Major Som Datt of Aligarh came to see me at Hoshiarpur before Indo-Pak War of 1971-72. After meeting me, he went to Bhrigu Samhita'a office for consulting his horoscope. He was told that he was a judge in his previous life. He accepted a huge amount of money as a bribe from a culprit and acquitted him and punished an innocent pbrson in his place. He was told that he had to reap the fruit of that bad deed in this life and there was

a great danger to his life. The astrologer suggested some Hawan etc., and spending a huge amount of money on that ceremony. But Major Som Datt did not perform that ceremony.

However, when he went to join his duty, where he was posted, he was ordered to go with two companionsto Shakargarh (a town). All the three persons alongwith the driver were travelling by a jeep. After a few miles, suddenly a mine burst out near the road, on which they were travelling. All of them suffered serious injuries by the blast. Major Som Datt's legs were seriously injured and one leg had to be amputated. He remained in the hospital for about a year. He wrote a letter to me, "When this accident occured I became unconscious. Baba Ji ! you appeared in that state of unconsciousness and blessed me. You said, 'Som Nath ! don't worry. You will not die.' I gained consciousness after five days in the hospital and found that one of my legs was amputated and an artificial leg was to be fixed.

Now I was reminded about the prediction for Som Datt. Bhrigu-Samhita astrologer had warned Major Som Datt that his life was in danger. He did face a great danger and lost his leg as a reaction of his bad deeds of his previous life. You may believe in astrology or not, it is upto you. But you cannot deny the importance of your Karmas or deeds. You have to agree that your previous deeds done in many

past lives do dominate your present life.

I narrate to you another incident. Mr. Raghubir Singh of village Sanghani was suffering from cancer. He was admitted to P.G.I. Chandigarh. The authorities of P.G.I. had told the relatives of Raghubir Singh that the disease of the patient was incurable. So he went back to his home from there. The members of his family brought him to Hoshiarpur to see me. I sent Raghubir Singh's horoscope to Bhrigu Samhita office for consultation and prediction. The astrologer said, "that this man Raghubir Singh shall come into contact, with a saintly person, who is doing a great servive for suffering humanity. This Mr. Raghubir Singh was by profession a record keeper (Munim) of a big businessman in his previous life. That businessman had full faith in the book keeper. But that businessman died suddenly, while he was young leaving behind him his widow, swall children and flourishing business. It was the duty of Raghubir Singh to look after the family and flourishing business of his master. But on account of greed, Mr. Raghubir Singh usurped all the belongings and property of his departed master and his family became destitute. Raghubir Singh committed this unpardenable sin in his previous life so he is suffering due to that bad unpardonable Karma or deed. It was further predicted that Raghbir Singh would soon die and his children would become destitute, just as he had made

the children of his master destitute. But fortunately some of his relatives will look after his children."

Actually that prediction also proved to be true After the death of Raghubir Singh, one of his relatives left his job in the military and came to look after his family. So you see that we are dominated not by the deeds of this life only, but the deeds of many past lives also.

My father was very short tempered and had no control on his tongue. My mother was a very noble and devoted woman. Perhaps she was sick of the bad temper of my father. So she used to say very often that it was her wish that she should never be born as a woman in her next lives. Before she died she said, "I wish both my sons Faqir Chand and Surendra Nath should be blessed with sons only." I knew her feelings very well.

When my brother got married, I wrote to my brother that our mother shall take birth in his home as his first son. My prediction proved to be true. My brother was blessed with a son, whose name is Shivinder. He is very much attached to me and his father.

One of my daughters Prem Piari died, when she was very young. At the time of her death she remembered her husband and then a girl Sarla Devi, who was the daughter of one of me closest friends. When

my friend came to me for condolence, I predicted that my departed daughter Prem Piari would be born to Sarla Devi as her daughter and she would not be happy in her married life. According to my prediction Sarla Devi was blessed with a daughter. She was married at very young age. He husband died within ten years leaving her a widow. Why did it happen so ? Because the married life of my late daughter Prem Piari was very miserable. Her mother-in-law always ill treated her and ultimately the mother-in-law poisoned Prem Piari. The same Prem Piari was born again as Sarla Devi's daughter to pay her Karmas again in this life. Poor Prem Piari had to suffer again. Everybody has to pay off for his deeds if not in one lift then in many lives.

On the basis of my experience I say that the solution of all our worldly problems, worries and afflictions lies beyond the mental realms, beyond the state of thoughtlessness. Spiritually begins from thoughtlessness or the state of Mahasunna. I am indebted to those, who consider me as their Guru. They helped me to go beyond the mental realms. Now I meditate on Surat (Pure Self) and not on the mind. But common people cannot reach this stage so easily, because they have the desires for name, fame and wealth. So the teachings of the saints are

not for the general public. Do you think that the present system of initiating thousands of people in a row is for the well-being of mankind ? Certainly not.

This method of mass initiation is very dangerous for the so-calied Gurus and the initiates both. The people who are initiated are not aware of the power of thought of their subconscious mind.

Hazur Baba Sawan Singh Ji Maharaj used to advise a girl to get married. But she always said,"Baba Ji ! I don't want to get married,I want to become great meditator." After the departure of Hazur Sawan Singh Ji Maharaj his successor Hazur Baba Jagat Singh Ji Maharaj also advised the some girl to married, but she refused to get married. After the departure of His Holiness Baba Jagat Singh Ji Maharaj that girl started to visit me and attend my discourses. I also advised her to get married. But she was not ready for marriage.

One day she camo to visit me and said, "Baba Ji I saw a strange dream, in which Baba Sawan Singh Ji came to me and asked me, "From where should I find a bridegroom for you ?"

In the meantime you appeared. Baba Sawan Singh Ji Maharaj tied a garland on yonr forehead and got me married to you."

Now I ask you why that girl had such a dream. Because that girl had refused to marry, but the idea of marriage was always in her subconscious mind. Whatever thoughts and Samkaras are in your subconscious mind, they get magnified in your dreams. As that girl had the idea of marriage in her unconscious mind, so it was magnified in her dream. So you have to be very careful about your thoughts. Your thoughts are the maker of your life, and your deeds or Karmas are responsible for the consequences. You cannot avoid the fruit of your previous deeds.

Man is the Highest Reality, whose Aim is Self-Realization according to Upanishads

by

H. H. Manav Dayal

Dr. Ishwar C. Sharma

According to the Upanishads man has been regarded as the highest reality, because, of all the creatures of the world, it is only man who is self-conscious and most anxious to become infinite. In spite of his finitude and imperfection man feels a great urge to attain infinity and perfection. This keen desire to go from the limited to the unlimited, from the mortal to the immortal and from the relative to the absolute state of existence is indicative of the fact that his real self is not his individual self, but something else and that something else is the Universal Self.

The innermost nature of man is not contradictory, relative and pluralistic existence, but is non-contradictory, absolute and non-dualistic reality

is potentially God. The aim of ethics is to convert this potentiality of man into an activity, his manhood into Divinity and relativity into Absoluteness. In order to achieve this goal man has to rise from the level of selfishness to that of self-sacrifice and devotion, from narrow sensual satisfaction to the state of equipoise and equilibrium, and from personal individualized and egoistic attachment, to the impersonal, universalized and absolute transcendence.

This very state of existence has been referred to as the state of Sthitapragya in the Bhagavadgita and that of Jeewanmukti (freedom or liberation, while living in physical form) in the Jaina, Buddha, Samkhya and Yoga systems. The Upanishads point out that once a person, who attains this level of existence, automatically eschews fear, hatred, jealousy, and enmity. When a person identifies his personal self with the Universal Self or Brahman, which is immanent in the whole cosmos. If once a person comes to realize that he is one with the whole world, rather the whole universe, how can he hate anybody? If he hates anybody should he hate himself? If he is afraid of anybody, should he be afraid of himself? If he is jealous of anybody, should he be jealous of his ownself? When this stage is attained through knowledge man gets self-realization and the person self-realization is called Gyan Yogi.

Gyanmarg, the path of knowledge is

not the side gateway to self-realization. The Upanishads advocate the Karma Marg or the path of action also, which enjoins upon the aspirant to control his senses, and to do his duty sincerely. He who has understanding and is strogminded, his seses are well-controlled like the good horses of a chariot.

The Upanishads point out the necessity of true knowledge and the purity of character on the one hand, and on the other,explain the nature of Moksha, liberation, the freedom from the cycle of births and deaths. The ethical and active aspect of the Upanishadic code of conduct was subsidiary to and means of the attainment of the highest state of infinite existence, infinite consciousness and infinite bliss (Sachchidananda). The Upanishads clearly state that self-control and detachment from sensual desires are the means towards identifying the individual self (Atman) with Brahman. In theory the concept of Moksha is an ideal, but in practice it is an actual state of existence, experienced by an individual in his life. In theory, right and wrong and good and evil are ideals and discrimination between them is the essential intrument for attaining Moksha. But when the aspirant attains the actual state of Jivanmukti, these become meaningless and pale into insignificance. Thus ethics and metaphysics, science and religion and logic and mysticism merge into the whole spiritual experience of man, having attained which he promotes morality,

without being actively engaged in its propagation. He thinks about the well-being of each and every person, who comes into contact with him.

When man subjects himself to spiritual discipline his infinite powers of knowing, feeling and willing are converted into infinite knowledge, infinite love and infinite power and he becomes God. Man's urge to become Divine is most important, because it is the means as well as the end of perfection. The universal tendency of mysticism and self-surrender to God is nothing but the spiritual unrest in the bosom of man to transcend empirical limitations and to breathe, live and have his being in God. Commenting upon this aspect of man, Dr. Radhakrishnan remarks, "Man is in anguish when he is separated from God and nothing else than union with God can satisfy his heart's hunger."

Worldly pleasures and sensual enjoyments pale into insignificance when the highest bliss of the union with God is aimed at. Eternal bliss cannot be experienced by man at any stage lower than that of God-realization. It is very important to remember that man is the miniature Cosmic Self, having body, mind intellect and soul. The cosmos is the external Self, having earth, moon, sun, parmeshthi (The galactic center) and Prajapati (The center of all the universes).

The metaphysical background of the Upanishadic philosophy is non-dualistic reality. Its goal is self-

realization and the means of attaining self-realization are reason, renunciation and devotion. Thus Upanishadic ethics is not only universalistic but cosmic. According to the Upanishadic philosophy the concept of duty or Dharma is not negative, but out and out positive. A man has not to give up the worldly desires, but discretion consists in giving up false and meaningless desires. We have to give up the animal desire, lust, the impulsive craving of the brute man.

Purification of heart and virtuous life are also the prerequisites of a man who is aspiring to grow spiritually. The inculcation of the five virtues of self-renunciation, charity, adherence to Truth, right conduct and non-violence are necessary virtues which a man should follow.

There is no doubt that the Upanishads implicitly contain the three fold path of knowledge, action and devotion. Here knowledge stands for the knowledge of the Ultimate Reality, action stands for self-control and devotion represents passion for Brahman.

According to Taittiriya Upanishad one should always speak the truth, practice virtue. One should not be negligent of truth. One should never be negligent of prosperity." This proves that the Upanishadic ethics did pay attention to social and moral well-being of a man and society. The honour and respect to the teachers and the parents was necessary in the Upanishadic period. The morality consisted

in service of man, who is the image of God. self-control and decent behaviour both at home as well as abroad.

There is no doubt that the ideal of Moksha or self-realization is the ideal of God-realization. But as long as man is imperfect, so long as he is limited and finite, he has to follow the path of knowledge, action and devotion to attain that self-realization. When a person is enlightened, he attains self-realization and gains the true experience of the Universal Self, he must constantly be devoted to the well-being not only of human beings, but of all the living creatures. Upanishads remark, "That who considers all living creatures equal to his ownself is the seer."

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves

Love and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

I had given you the information of my last tour upto September 16, last month. When we landed at Bombay, my dear Rasool Anand (Azad), dear Acharya Nirmala Pandit dear Mrs. Sarla Bhan, Young Omi Tiwari, dear Bhagwan Vyas from Hyderabad and about twenty other satsangees were already present at the airport to welcome us.

Dear Renuka Pandit, wife of dear Ravi Pandit and the daughter-in-law of Acharya Nirmala Pandit was also with us. She had joined us from Abu Dhabi, where young Renuka and Ravi live. Ravi had a keen desire to meet us at the airport. He approached the authorities of the airport to give him that opportunity, when he came to leave his wife. But on account of the strict security, he couldn't meet us and kept standing at the airport till our aeroplane took off.

I had told you in one of my monthly messages that in July 1989 we went to Kashmir (Shrinagar) to attend the marriage of dear Ravi. This couple is very sincere and dedicated to us and Manavata Dharma. Dear Ravi sends money very often from Abu Dhabi for Manavata Mandir. That shows his love for the temple. After his marriage to beautiful young Renuka, the couple came to me for blessings. It is noteworthy that Renuka entered the religion of humanity (Manavata Dharma) on the fitst day of her marriage. She is a unique young lady with firm faith and conviction like her devoted and dedicated husband. They came to Hoshiarpur from Kashmir and stayed with us for two days. We felt as if our real son and daughter-in-law were with us. Before their departure for Abu Dhabi, I blessed them and gave them blessed fruits, with the idea that they should soon be blessed with a noble son. They were blessed on November 17, 1990 with a handsome little boy Divya Darshi who was born at Bombay. Whe he was hardly three weeks old, he was brought to Delhi by air by Ravi and Renuka at the residence of Acharya Shri K. P. Verma for my blessings.

On his arrival Ravi told me that when Renu was pregnant some psychic had told him that she woul give birth to a daughter. Ravi did not believe.

He was sure that he would be blessed with a son, because I had told him so. He had declared to his friends in Abu Dhabi that he would be blessed with a son according to my blessings. He told his friends that his Guru (I) can never be wrong. Anyhow, the couple was blessed with a son Divya Darshi because of their firm faith. There are scores of other miraculous events which happened with Ravi. There is no space for mentioning them here. I want to say that faith can move mountains.

I was telling you that we arrived at Bombay on September 18, 1990 and went straight to Acharya Nirmala's residence from the airport. Hundreds of devoted satsangees had already reached there to welcome us. In the evening a satsang was organized by Acharya Nirmala Pandit in a small temple. Hundreds of devoted satsangees from Bombay and vicinity attended that spiritual discourse, which was very inspiring and beneficial for the dear aspirants. Another spiritual discourse was organized, which was very well attended. I also visited some homes and gave blessings to the family members. We spent a night at the residence of dear Deepak, the youngest son of Acharya Pandit and his young wife Arushi Pandit and their one year old lovely son Ashutosh Pandit. This couple is also very dedicated and both husband and wife have firm faith in Santmat and me.

Next morning Rasool Azad joined us at Deepak's residence for morning meditation.

Next day we stayed at the residence of our dear devoted Mrs. Sarla Bhan. She, her son daughter and daughter-in-law served us day and night. All of them are very sincere and devoted aspirants. We visited Rasool Azad also and met his lovely wife, two daughters and a teenager son. The whole family is very noble, and devoted. Rasool is always ready with his car to convey us anywhere we wish. His services are unique. People like him as the true follower of Manavata Dharma.

On September 18, we stayed at the residence of Acharya Nirmala Pandit and another evening satsang was organized at her residence. On September 19, we flew from Bombay early in the morniug and reached Delhi in less than two hours. We went direct to Acharya Shri K. P. Verma's residence, We were there for the whole day and spent that night there. Scores of satsangees came there to visit us, to get blessings.

A satsang had been organized at our residential house in Faridabad on Septumber 20, at 3 p.m. We were expecting very few satsangees at Faridabad, in a remote corner. But when we reached Faridabad at 2 p.m., we were surprized to see that about four hundred people had gathered there from Delhi, U.P.

Faridabad and vicinity. Our house taker our adopted son Ram and his wife Jamuna told us that people had started pouring in since morning at our residence. Both of them took care of all the satsangees, provided them food and place for taking rest. The house looked so beautiful with the presence of devoted satsangees and their small children and looked like an Ashram of spiritualism.

I reached Jalandhar early in the morning on September 21. A satsang had been organized by dear devoted aspirant Mr. Trilok Sharma at his residence at 3 p.m. The satsang was very inspiring for the aspirants. After the satsang we reached Hoshiarpur at 6 p.m. Acharya Shabdanand and Kumari Sadhna Saxena had come to Jalandhar from Hoshiarpur for the satsang.

Although the situation of the whole country was tense due to the students' agitation against Mandal Commission, yet many satsangees from distant parts of the country, came to Hoshiarpur to attend the monthly satsang of September 23. Many of them had reaohed on September 22. I appreciate the dedication and devotion of dear satsangees.

As usual the devoted satsangees of Batala served

breakfast to all the satsangees present there. Although all the satsangees of Batala are very devoted, yet the names of Dr. Chander Nagesh Negi, Mr. Dev Raj, Master Kuldeep Sharma and Shri Ram Pratap are worth-mentioning. They are very regular in attending all the monthly discourses. I wish that their example of dedication and devotion should be followed by other satsangees. The discourse on that day was so inspiring and interesting that it appeared that all the satsangees were drowned in that discourse and went into trance. I myself felt that I was in the supreme state of bliss.

The situation of the whole country was tense for the whole month of September. All the means of communication from Hoshiarpur to Delhi had been disturbed. There was no way or means to reach Delhi for Dusehra festival to be celebrated in Salwan School. So I could not reach Delhi in spite of all my efforts. But the function was made successful by the efforts of Acharya Sh. K. P. Verma his associates and Bhagya Mate Ji. My tape-recorded discourse was played. Then Mata Ji and Acharya K. P. Verma spoke to the satsamgees. Bhagya Mata Ji told me

that Acharya K. P. Verma gave a very effective and inspiring discourse on the Devotion to Guru (Guru Bhakti). I am so sorry that I missed meeting my dear satsangees, so I announced that this celebration would be held on November 4, 1990 in the lieu of Dushera satsang.

There was no tour in the month of October except the monthly satsang on October 20 because of the tense situation in the country. I was in Hoshiarpur all the time writing monthly messages and completing the translation of Gulistan-e-Hazar Rang, which was edited by—the most senior and worthy pupil of H. H. Data Dayal Ji Maharaj, Shri Mohan Lal. Nayyar of Delhi. He compiled this book in Urdu language. I am enjoying this translation and especially the verses of Data Dayal Ji and Kabir into English poetry. I hope this book will be very well-received by the Western readers and inspire them and the religion of humanity will be known in the whole world.

On November 18 and 19, 1990, we celebrated in Manavata Mandir the birth anniversary of Param Sant Param Dayal Ji Maharaj with great ferver. November 26, 1990 was a historical event in the

history of Manavata Mandir, because twenty members of A.R.E. of United States of America visited Manavata Mandir for the first time. The A.R.E. group landed at New Delhi from New York on November 25 early in the morning. I addressed the A.R.E. group in the evening in Oberoi Hotel. The director and leader of the group Dr. Charles Thomas Cayce (the grandson of the sleeping prophet, mystic and saint of nineteenth century—Edgar Cayce who was born in U.S.A., this time) and the Chairman of A.R.E. said in his most inspiring speech that the whole group was grateful to me, because of my help for their tour in India. I had already told you that the first group of A.R.E. visited India under the leadership of Dr. Hughlyn Cayce, the worthy (late) father of Dr. Charles Thomas Cayce in 1969 when Hughlyn Cayce returned to U.S.A., after the world tour having met many psychics, mystics and spiritually advanced persons all over the world. He held a meeting in New York to tell the experiences of the members of the group. Hughlyn Cayce was the main speaker. I also had the opportunity to address the audiences.

Hughlyn Cayce told, "We had the opportun ty

to meet many psychics, mystics, religious leaders, spiritually advanced people and healers. Among them there was a healer from Holland. He heaied a seriously injured dog, whose leg had been broken in an accident of a motor car. The healer healed the dog with the radiation of his hands. It was done in our presence. The dog was healed mirecolously and it started walking. In India they met many spiritual persons and mystics. In Philipine they witnessed the psychic surgery, and also saw people walking barefooted on the burning cinders. We met many mystics religious leaders and spiritual people in India. We had the golden opportunity to meet Faqir Baba many times. I can tell you that this great person is one of the greatest and truest saints of the world at present. His ideas not caring for sect, creed, denomination, race, sex and even nationality, and the experience of his life are the source of inspiration for all the people of the world. He is very close to my late father Edgar Cayce."

I also addressed the audiences. It was decided in this very meeting that the institution of A.R.E. (Association for Research and enlightenment would co-operate with 'Be Man' mission for the well-being

of the whole world. As a result of this His Holiness Paramsant Param Dayal Pandit Faqir Chand Ji Maharaj (affectionately known as Faqir Baba in the West) was invited to give discourses in A.R.E., in 1972 for the first time.

On November 25 I travelled by Frontier Mail at night, alongwith Dr. Charles Thomas Cayce and his group and reached Jalandhar at 4 a.m. on November 26, 1990. We had breakfast at Jalandhar and after a few hours, we left for Manavata Mandir (Temple of Humanity) Hoshiarpur in an airconditioned bus. Each and every member of A.R.E., was welcomed heartily andenthusiasticallyby the authorities as well as the inhabitants of the Ashram (institution) Manavata Mandir. The whole campus was decorated beautifully right from the gate of the temple, to welcome our Western guests our brothers and sisters. A heautiful tent was put up in the middle of the campus, where the discourse was to be delivered. The stage was also decorated beautifully and some of our mottos like "Be a man first," "The whole world is just like a family," "Produce children for the sake of children. Unwanted childred are burden not only for parents, but also for the ~~nation, rather for the world~~" were written on the walls of the stage.

As soon as our bus stopped in front of the gate of Manavata Mandir, the inmates ran to welcome the honourable guests. Mr. S. N. Bhardwaj, the retired Principal of a college and an ex-president of the Trust of the institution, Shri Narayan Das Dogra, a very senior devotee of Faqir Baba and the Vice-President of the Trust. Mr. S. L. Sethi, a senior devotee and the Chief Secretary of the Trust Acharya Shabdanand, the Chief spiritnal Secretary to H. H. Manav Dayal Dr. Ishwar C. Sharma, Kumari Sadhna Saxena, Principal of our High School, Kumari Puja, Mr. and Mrs. Ravi Nanda, Mr. and Mrs. Pradeep Khanna, Mr. and Mrs. Pawan Mallan, the inmates of the Ashram and many other visitors and and the public of Hoshiarpur were present at the main gate of the temple. All of them welcomed the honourable guests with garlands. Pandit Nand Lal Ji is a very old devotee of Faqir Baba. He is very humble. He touched the feet of each and every guest. The guests were over-joyed and overwhelmed by this wonderful reception.

After this reception, all of them walked towards Anami Mandir (Transcendented Temple) and the tomb of Faqir Baba to pay pay their homage to him.

They were very much impressed to see the marble o statue beautifully carved. After that we all came to the tent. The discourse started with the welcome speech of Acharya Shabdanand. He explained beautifully how this Manavata Mandir, which was founded by Faqir Baba to propagate the ideal of friendship, love, brotherhood and humanism for the well-being of mankind, is flourishing under the able guidance of H. H. Manav Dayal Ji Maharaj.

Dr. Charles Thomas led his group in satsang to the meditation. All the members of A.R.E. alongwith the inmates of the Ashram and the audience meditated for about twenty minutes. Then Dr. Charles Thomas Cayce thanked the authorities of Manavata Mandir, who had made beautiful arrangements. He said, "We have come to this country and particularly to Manavata Mandir to know the roots of Indian culture, spirituality and meditation, which my grandfather was trying to preach and practise."

I have already told you many times that A.R.E. is famous all over the world. After Charles Thomas Cayce Dr. Krishna Murari of Sadhu Ashram read

a beautiful and inspiring poem composed by him in Sanskrit language. Before I started my discourse Mrs. Sita Devi sang a beautiful verse and then Miss Sadhana Sexana read out a beautiful verse of Data Dayal Ji Maharej, entitled, "Oh you the giver of the highest knowledge, give us the true knowledge from the reservoir of your wisdom." The English version of this verse was read out by Acharya Shabdagand. My discourse was bilingual because I had to communicate my ideas to many Indian aspirants who didn't know English, and the English knowing guests. who didn't know Hindi I told in Hindi,"It is a matter of great pleasure that A.R.E. has been associated with Manavta Mandir since 1969, when the first group of A.R.E. visited India under the leadership of late Mr. Hughlyn Cayce for the first time. Then this institution invited Faqir Baba in 1972 to U.S.A. for the first time. Then Faqir Baba delivered his discourses in the venues of A.R.E. in 1976, 1978 and 1980." When our American aspirants were sitting with the aspirants of India, it appeared that East and West were meeting. When the verse written by Data Dayal Ji was being sung, the

Americans although they did not understand Hindi, got inspiration from that verse and almost went into trance. Although the A.R.E. groups had visited India three times earlier, yet those members came to visit Manavata Mandir Hoshiarpur for the first time, so it was a historical event in the history of Manavata Mandir and spirituality. Manavata Dharma (The religion of man or humanity) and the Association for Research and Enlightenment have the same ideals and objectives and have co-operated in the propagation of spiritual humanism for the last eighteen years. Dr. Charles Thomas Cayce gave a lecture referring to the principles and teachings of spirituality, on the basis of the experiences of grand-father Edgar Cayce.

I explained the true meaning of the word, "Radhaswami" which is non-denominational. I explained that the Yoga of Light Sound (Surat-Shabda Yoga) was a technique of meditation which can be practised by any person beloaging to any sect, religion, sex, race and nationality. This technique of Yoga so of Light and Sound is potentially present in Cristianity and other religions of the world.

At the end, Principal Bhardwaj gave a very enlightened and inspiring speech thanking all the guests, especially the foreign guests, who had obliged the inmates of Manavata Mandir and made it a historical event.

A very sumptuous lunch, which was prepared with great love by the inmates of the Ashram, especially by the ladies like Miss Puja, Miss Sadhana Saxena, Mrs. Rajkumari, Mrs. Renuka Khanna, Mrs. Shama Nanda, Mrs. Sudesh Mallan, who always help making evry function successful. The members liked the Indian dishes very much especially because it was prepared with true love and affection.

After the lunch all the members came to see me in my room, in fact the room of Faqir Baba, where he used to sit, eat food, take rest and meditate for hours together. This room is full of radiations of Faqir Baba even today. They sat for meditation with me for about twenty minutes. When they rose up from meditation they told me that they had had most enjoyable and blissful meditation. They believe in the the theory of radiation, so they did feel the presence of Faqir Baba in that room.

One person named Zimund went into trance and didn't leave the room. When he came out of trance he said he would like to re-visit Manavata Mandir and meditate in that very room. Many other members also expressed their desire to visit Manavata Mandir again.

Blessings of the Supreme Compassionate Lord to all of you.

Yours in Faqir
Manav

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी

फरवरी, मार्च का दौरा

25-2-91 से 26-2-91 तक	अलवर	श्री मूल चन्द गान्धी ब्रह्मचारी चौक, अलवर
27-2-91 से 28-2-91 1-3-91 तक	भीलवाड़ा	श्री टी. एन. गुप्ता A-1/5 शास्त्री नगर, भीलवाड़ा
2-3-91	जयपुर	सत्संग प्रात: 9 बजे श्री महाराज कृष्ण शर्मा, 16-C (B) मोती मार्ग, बापू नगर, जयपुर
3-3-91	फरीदाबाद	सत्संग सायं 3 बजे मकान नं. 72, सैक्टर 21-B फरीदाबाद (इलाहाबाद बैंक के पास)
5-3-91 से 6-3-91 तक	मोदी नगर	श्री एस. डी. शर्मा टीचर्स कालोनी क्वार्टर नं. 2, मोदी नगर
7-3-91	मेरठ	सत्संग प्रात: 9 बजे तथा सायं 5 बजे मवाना रोड श्री ब्रह्म सिंह C-48 डिफैन्स कालोनी, मेरठ
8-3-91	बनवारीपुर	सत्संग प्रात: 9 बजे श्री जय चन्द त्यागी बनवारीपुर
9 से 12-3-91	मुज़फ्फरनगर, चरिथावल मुण्डभर	श्री रुपेन्द्र बत्रा लोहा बाज़ार, मुज़फ्फरनगर
13-3-91	सरसोंहेड़ी	श्री देव दत्त त्यागी, सरसोंहेड़ी
14-3-91	यमुना नगर	श्री रमेश गोयल यमुना नगर

Regd. No. 26265/74
MANAV MANDIR

FEB. 10th 1991

Address

415 President Radha Swami
Sat Sang Bhawan via Pitlam
Nizam SagarDistt. Nizamabad A.P.

From :

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)